जनवरी 2015 वार्षिक मूल्य ₹ 150

साधन

संस्थापक : समर्थ गुरु परम संत डा. चतुर्भुज सहाय जी

ॐ

रामाश्रम सत्संग, मथुरा

ॐ

साधन

जनवरी-2015

अनुक्रमणिका

ॐ

साधन

वेद-मंत्र

परस्या अधि संवतो, अवरां अभ्यातर।
यत्राहमस्मि ताँ अव ।। — **यजुर्वेद 11/71**

– हे ज्योति: स्वरूप परमात्मन् ! तुम दिव्यता की सर्वोच्च भूमिका पर विराजमान हो । तुम अपनी उर्ध्वस्थ भूमिका से निम्न भूमिकाओं में स्थित हम लोगों के हृदय में अवतीर्ण होकर हमें अमृतमयी दिव्यता से अनुप्राणित कर दो । हे गुरु ब्रह्म ! हमारे मन, बुद्धि, प्राण व रोम-रोम अमृत की दिव्यता से पुलकित कर दो।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

वर्ष : 82 अंक : 6	**जनवरी-2015**	वार्षिक मूल्य : ₹ 150.00 इस अंक का : ₹ 16.00

-: सन्त का मत :-

जाके प्रिय न राम बैदेही ।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ।।1।।
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनितनि, भये मुद मंगल कारी ।।2।।
नाते राम के मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लों ।।
अंजन कहा आंखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लों ।।3।।
'तुलसी' सो सब भांति परमहित, पूज्य प्रान से प्यारो ।।
''जासों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो।।

— संत श्री तुलसीदास जी

अमृत बिन्दु :-

भय पर दो महात्माओं की बातचीत

– परमपूज्य श्री गुरुदेव

[अध्यात्म में भय का स्वरूप और ही होता है। साधकों को, आचार्यों को इसी स्वरूप को समझ जीवन में उतारने की आवश्यकता है- सं....]

एक समय एक सज्जन एक मुसलमान फकीर से मिलने गये, हम भी साथ थे। उन महात्मा ने इनसे प्रश्न किया कि बताओ-वह चीज कौन-सी है जो इन्सान को इन्सान बनाती है । यह भी थे तो ऊँचे दर्जे के साधक और किताबी इल्म भी इनका काफी था परन्तु कोई उत्तर इनसे नहीं बन सका । स्वयं ही कहने लगे- ''खौफ, खुदा से खौफ करो, अपने पीर से खौफ खाते रहो, यही इन्सान को इन्सान बनाता और निजात (मोक्ष) दिलाता है। बेखौफ आदमी गुमराह हो जाता है, वह करने न करने सभी काम करने लगता है, ऐसों के लिए दोजख (नरक) है ।''

फिर बोले- ''फकीर किसी का नहीं है और सबका है । उसे सबसे मुहब्बत होती है और किसी से नहीं होती । इसलिए हमेशा डरते रहना चाहिए । मुरीद (शिष्य) को ऐसा ख्याल कभी भूलकर भी दिल में नहीं लाना चाहिए कि पीर (गुरु) हमारा हो गया, फकीर को किसी का मोह नहीं होता । उनके अन्दर बहुत ही नाजुक मिजाजी आ जाती है, जरा सी हुक्म उदूली या बेअदबी होने पर असन्तुष्ट या नाराज हो सकते हैं । चाहे वह अपने भाव प्रकट न होने दें पर उनका जरा-सा ही बुरा ख्याल किसी को नुकसान पहुँचाने के लिए काफी होता है क्योंकि वह साहिबे ख्याल (संकल्प शक्ति के मालिक) होते हैं । मुरीद को हर समय अपने गुरु की याद रखना, तन-मन से उनका अदब करना और हमेशा भय खाते रहना लाजिमी है । जो मुरीद इन तीन बातों में पास हो जाते हैं उनका ही काम पूरा हो पाता है, बाकी सब लटके रह जाते हैं ।''

''पीर की एक निगाह ही मुरीद के उठाने के लिए बहुत होती है, एक लहमे (पल) में वह मुरीद को कुछ का कुछ बना सकता है, वह दूर भी फेंक सकता है और मालिक के दरबार में भी पहुँचा सकता है, मुरीद का फर्ज है कि उसे जैसे भी बने अपना बना ले और बस ।''

फिर बोले- ''भाई ! जिसने पाया है अदब और खिदमत से ही पाया है । खादिम (सेबक) ही मखदूम (सेव्य) बनने का हकदार होता है। मगर खिदमत वेगरज (निष्काम) और मुहब्बत (प्रेम) की होनी चाहिए । अदब भी जिस्म (शरीर) का कुछ काम नहीं आता, दिल का अदब ही अदब कहलाता है । जिस्म का भी हो और अन्दर के भी भाव वैसे ही हों तब फकीर खुश रहता है क्योंकि वह अपनी कशफ़ (दिव्य दृष्टि का अनुभव) से अन्दर का हाल जान लेता

है। कपट और मक्कारी वहाँ काम नहीं देती । दिखावे और गर्व (अभिमान) को लेकर किसी फकीर की खिदमत में न जाय, फिजूल की बहस मुबाहिसा भी उससे न करे, अगर कुछ पूछना हो तो खामोशी और नम्रता से इजाजत लेकर उससे पूछे । ऐसे लोग ही अक्सर मक्बूल होते देखे जाते हैं ।''

''आजकल फकीरी का ढोंग रह गया है, फकीर असली देखने को भी नहीं मिलते। जो दुनिया से वेखबर होकर खुदा में अपने को गुम कर दे वही फकीर। मगर लोग जरा-सी ताकत हासिल करके करामातें दिखाते फिरते हैं, गण्डा-ताबीज बनाते फिरते हैं, इससे शुहरत हो जाती है । दुनिया वाले इज्जत करने लगते हैं, खाने पहिनने को भी अच्छा मिल जाता है, दस आदमी हर समय खिदमत को तैयार रहते हैं पर इससे क्या फायदा मिला । आखिर दुनिया के कुत्ते ही रहे, खुदा से और दूर हो गये इसलिए बहुत ही होशियारी से कदम बढ़ाना चाहिए । जो छुपा कर अपने को रख सकता है, जुबान को बन्द करके अपना काम करता है वही उसको पाता है।''

''दुनिया के झंझटों से घबराके भागना और गोशा तनहाई (एकान्त) में बैठना फकीरी नहीं है, जो सब कुछ करता हुआ और बाल-बच्चों में रहता हुआ दिल से उसकी याद नहीं भुलाता और उसी के भरोसे अपने सारे काम चलाता है वही सच्चा फकीर है । जायज तरीके (नेक कमाई) और मेहनत से पैदा करना, उसको खुदा की तरफ से आया हुआ जानना और उसमें अपने सारे मुतल्लकीन (कुटुम्बियों) का हक समझना उसके बन्दे की शान है । फकीर का मका है कि आराम में भी शुक्र (धन्यबाद) भेजे और तकलीफ में भी शुक्र भेजे । तकलीफ भी आराम का ही दूसरा पहलू है जैसे रात-दिन । उसकी मसलहतें (भेद) वही जानता है । वह सारे काम बन्दे की भलाई के लिए ही करता है । इसलिए कभी भूल के भी शिकायत को जुबान पर न लावे, जिस तरह वह रक्खे और जो कुछ भेजे उसी में गुजारा चलावे यही 'रिजा' की राह है । बिना रिजा (समर्पण) और तवक्कुल (भरोसा) के फकीरी पूरी नहीं होती । अपनी ख्वाहिशों (वासनाओं) को उसकी ख्वाहिश में गुम कर दे, अपने इरादे उसके इरादे के साथ ही, यहाँ तक कि अपनी खुदी भी उसकी खुदी में समा जाये, यही मकसद (ध्येय) होना चाहिए और सब फिजूल (त्यागने योग्य) है ।''

''कोशिश करते चलो मुश्किलें आयेंगी, रुकावटें पड़ेगी, मगर अपने इरादे को मत छोड़ो, जब तक पीर का हाथ तुम्हारे सिर पर रहेगा कोई ताकत तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती । पीर का दामन मत छोड़ो, उसका कदम मजबूती से पकड़े रहो, खुदा तुम्हारी मुरादें (इच्छायें) पूरी करेगा, गैबी मदद हर समय तुम्हें मिलती रहेगी । आमीन सदआमीन (शान्ति सौ बेर शान्ति) कहकर हम सबको रुखसत किया ।''

कितना अमूल्य उपदेश है, साधकों को इसका एक-एक शब्द अपने हृदय-पट पर लिख लेना चाहिए और इसी के अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिए । जिज्ञासु और मुमुक्षु, साधक और सिद्ध, शिष्य और गुरु यह उपदेश सभी पर लागू होता है, सभी के लिए कल्याणकारी है । खाली पढ़ लेने से कुछ नहीं होगा, धीरे-धीरे इसको अमल या प्रैक्टिस में लाना चाहिए, ऐसा स्वभाव और व्यवहार बनाना चाहिए तभी लाभ मिल सकेगा । ✦✦

सम्पादकीय

शाश्वत साधना

एक बार बम्बई के बड़े अच्छे महात्मा स्वामी कृष्णानन्दजी जो अक्सर टूण्डला आया करते थे, की चिट्ठी आई पूज्य पंडितजी महाराज के पास । लिखा ''मेरी आयु बहुत हो गई है । मेरी अभिलाषा है कि आपसे मिलूँ, आपसे बातचीत करूँ । अमुक तारीख में अमुक गाँव में आ रहा हूँ । यदि आप वहाँ आ जायँ तो बड़ी कृपा होगी ।'' पंडितजी महाराज ने मुझसे कहा वहाँ चलना है । हम उस गाँव में गये । वहाँ पहुँच कर मालूम चला वह महात्मा फिरोजाबाद चले गये हैं । फिरोजाबाद पास में ही था हम वहाँ पहुँच गये । दोनों संतों का मिलन हुआ । मेरा भी सौभाग्य था मैं वहाँ उपस्थित था, सुन रहा था दोनों महापुरुषों की बातें । स्वामी कृष्णानन्द जी ने कहा पंडितजी इस संसार में बहुत से संत महात्मा आए और सब पे उंगली उठी है । लेकिन आप के गुरु महाराज ऐसे महापुरुष थे जिन पर न कोई उंगली उठा सका न आलोचना कर सका । पूर्ण थे। और आपकी साधना ! सिंघनी का दूध है । एक अनमोल साधना है । वास्तव में ऐसा ही है । आज अगर हम गुरु महाराज के सिद्धांतों का अध्ययन करें तो पायेंगे कि उन्होंने एक नवीन साधना शैली आविष्कृत की जो शाश्वत है, सारभौमिक है, सर्वग्राह्य है और चौथी विशेषता है उसकी धर्मनिरपेक्षता । यह चार विशेष चीजें हम इसमें पाते हैं । गुरु महाराज की विचारधारा शाश्वत है। उन्होंने कहा कि ईश्वर की परिभाषा बहुत सी हुईं । किसी ने कुछ कहा और किसी ने दूसरी बात कहीं । इस्लाम ने अलग व्याख्या की और ईसाइयों ने अलग की । इस्लाम में और ईसाई धर्म में यह कहा गया कि जैसा हमारे धर्म ग्रन्थ में लिखा है खुदा वैसा ही है, इसके अलावा कुछ नहीं है । उनके अवधारणा (concept) को न कोई संशोधन कर सकता न ही विवेचना । भारतीय दर्शन ने जो व्याख्या की वह अलग है । भारतीय दर्शन ने परमात्मा के स्वरूप को कई कोण से देखा और कहा कि वह कोई सीमित चीज नहीं है । जिस कोण से देखेंगे उसकी एक नई परिभाषा निकल के आएगी। परमात्मा साकार भी है और निराकार भी । वह शिव भी है, राम और कृष्ण भी । आज विज्ञान का युग है । विज्ञान परमात्मा की अवधारणा नहीं लेता पर कहता है इस संसार में कोई सुपर पॉवर है जो सारा काम कर रही है । यही बात गुरु महाराज ने कही। परमात्मा एक

शक्ति है न उसका कोई नाम है न रूप। वह असीम है, formless है । जैसे पानी जो formless है, कोई उसे जल कहता है तो कोई पानी और कोई Water । वैसे ही परमात्मा की यह व्याख्या शाश्वत है । उन्होंने ईश्वर की एक धर्मनिरपेक्ष संक्षेप व्याख्या दी । जिसने जो चाहा नाम रख लिया । जिसने जैसा रूप चाहा बना दिया । सब अवधारणायें ठीक हैं । परमात्मा राम भी है, कृष्ण भी, खुदा भी है और God भी क्योंकि परमात्मा limited चीज नहीं है । वह विशाल है, असीम है हर दृष्टि से देखें, किसी भी युग में चले जायें परमात्मा की अवधारणा करें तो इस परिभाषा के आगे जा ही नहीं सकते। उन्होंने यह नहीं कहा परमात्मा ऐसा ही है पर उन्होंने कहा परमात्मा ऐसा भी है ।

दूसरी बात जो गुरुमहाराज द्वारा प्रतिपादित साधना के बारे में निकल के आती है वह है कि यह साधना सारभौमिक है । किसी धर्म सम्प्रदाय से न जुड़ के एक अलग स्वरूप दिया । उन्होंने कहा अध्यात्म अपने अन्तर का दर्शन है । हमें आत्म दर्शन करना है । इसके लिये तीन चीज प्रमुख हैं । धारणा, ध्यान और समाधि । यह तीन अवस्थायें जब आप में आ जायें तब अन्तर में जायेंगे । आपको धारणा करनी होगी, ध्यान में जायेंगे तब समाधि में प्रवेश होगा । समाधि वह अवस्था है जहाँ आपकी बुद्धि सम हो जाय । बुद्धि में कोई विचार न रह जाये। उस अवस्था में आप जायेंगे तो आपके अन्दर शान्ति भरेगी । उस परमात्मा का ज्ञान भरेगा । उसका आनन्द भरेगा। जानेंगे वास्तव में संसार क्या है, मैं क्या हूँ, परमात्मा क्या है । सारे रहस्य आपको समझ में आ जायेंगे। आत्म दर्शन कर लिया तो संसार का कोई रहस्य नहीं रह जायगा । जहाँ तक निगाह जायेगी सर्वत्र आत्मा ही आत्मा नजर आयेगा । ईशावासमिदम्। कैसे होगा ? उसका स्वरूप यह है कि हम तीन अवस्थाओं से निकलेंगे । धारणा, ध्यान और समाधि । धारणा क्या है ? ध्यान क्या है ? समाधि क्या है ? धारणा वह है कि हम कुछ चीज लेते हैं उसका अध्ययन करना है । हमें पता करना है कि परमात्मा क्या है ? हमारे गुरु महाराज ने एक बहुत सुन्दर सूत्र दिया । कहा परमात्मा की जैसी आपकी अवधारणा है वैसा उसका स्वरूप रख लो । ऐसी परमात्मा की धारणा को लेकर चलेंगे तो आपको ज्ञान होगा। वास्तव में परमात्मा का स्वरूप क्या है ? उन्होंने कहा अगर आप राम, कृष्ण या खुदा में जिसको मानते हो तो उसी को परमात्मा ले लो । हमें यह करना है कि अपने लिए ली गई परमात्मा की अवधारणा को शक्ति स्वरूप में समेटना है जो formless है । हमारे गुरु महाराज ने कहा जिस रूप को आप परमात्मा मानते हैं उस रूप से साधना की शुरूआत करें और उसे आगे ले जाते हुये वहाँ ले जायें जहाँ वह शक्ति रूप रह जाये। धारणा उसे कहते हैं जहाँ एक लिया गया विचार के अलावा और कोई विचार न रह जाये । एक विचार में पहुँच जाये कि परमात्मा ऐसा है । अगर आप ने form लिया कोई

तो उसमें बाधा आएगी । मान लिया आपने भगवान कृष्ण के रूप को ले कर धारणा शुरू की तो अनेक प्रकार के कृष्ण के रूप सामने आयेंगे । इससे आप धारणा नहीं कर पायेंगे । गुरु महाराज ने कहा अपनी अवधारणा को समेटो । समेटते-समेटते वहाँ ले जाओ जहाँ कोई विकल्प न रहे । प्रकाश ऐसी ही धारणा है जिसका कोई विकल्प नहीं है । हमारे गुरु महाराज ने कहा आप कोई भी अवधारणा से शुरू करें चाहे राम ले लें चाहे कृष्ण चाहे ईसा पर अपने इस अवधारणा को प्रकाश स्वरूप ले लें । एक उदाहरण से इसे समझें । एक जन सभा में हजारों भाई बैठे हैं । सबका नाम, सबका स्वरूप, सबकी समस्यायें सबके परिवार अलग अलग हैं । हरेक व्यक्ति के अनेकों विचार भी हैं । अब उस जन सभा में सबको नींद आ जाये तो किसी को कुछ भी याद न रहेगा । न नाम याद रहेगा, न जात, न परिवार, न समस्यायें, न अपना रूप सब एक हो गये । ऐसे ही हमारे गुरु महाराज ने कहा जब हम परमात्मा की धारणा करें तो उसमें हम अलग-अलग हो सकते हैं पर अपनी धारणा को समेटकर प्रकाश रूप में कर लेंगे तो सब की धारणा केवल यह रह जायेगी कि परमात्मा प्रकाश स्वरूप सामने विराजमान हैं । इस विचार में और गहरे जायेंगे तो यह परमात्मा का विचार भी नहीं रहेगा । अब आप में उस परमात्मा का ज्ञान और उसकी शक्ति भरने लगेगी । और धीरे-धीरे अनुभव होगा परमात्मा का आनन्द क्या है ? परमात्मा का स्वरूप क्या है। जहाँ निगाह जायेगी आप देखोगे वही परमात्मा है और कोई नहीं । यह जो काया है वह ऐसे है जैसे कोई मुखोटा लगा लेता है । सारा शरीर एक मुखौटा है । अन्दर जो आत्मा है वह सब में एक ही है । सब में वही विशाल रूप भरा हुआ है । समाधि में यह प्रत्यक्ष अनुभव होगा कि हम सब के ऊपर एक आवरण है पर भीतर सबके अन्दर वही परमात्मा है । चाहे हिन्दू, चाहे मुसलमान, चाहे सिख हो या ईसाई सबमें एक ही परमात्मा है और गहरे में जायेंगे तो अनुभव करेंगे कि जो शक्ति मुझमें चल रही है वह सब जीव जन्तु, पशु पक्षियों के अन्दर काम कर रही है । वही शक्ति परमात्मा है । इस अनुभव के बाद आप कहेंगे विशाल रूप में सब में वही परमात्मा भरा हुआ है । हम आप उसकी अभिव्यक्ति हैं । हमारे गुरु महाराज ने एक सारभौमिक साधना दी है कि अगर इसके द्वारा आप उस अवस्था में जाओगे तो देखोगे न यहाँ कोई हिन्दू है, न मुसलमान, न कोई सिख है न कोई ईसाई सब में वही परमात्मा है । उस अवस्था में जाकर जितनी जाति धर्म की समस्यायें हैं सब का समाधान हो गया । कोई समस्या नहीं रही । गुरु महाराज ने एक सारभौम चीज दी । तीसरा गुण सर्वग्राह्य । संतों का यही विचार रहा कि साधना ऐसी हो जो सब के लिये सुगम हो, सर्वग्राह्य हो । साधना कठिन है, संस्कृत के मंत्र दिये गये हैं तो बिना पढ़ा लिखा नहीं कर सकता । हमारे

गुरु महाराज ने कहा साधना सर्वग्राह्यी हो । परमात्मा सबका पिता है । उसे जानने और मिलने का अधिकार हरेक को है । चाहे ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय, चाहे शूद्र हो, चाहे स्त्री हो या पुरुष या कोई और जीव । सबको उससे मिलने का अधिकार है । सब का धर्म है उस परमपिता से मिलने का । उन्होंने एक सर्वग्राही सरल साधना दी जिसमें कोई बनावट नहीं करनी, कोई मंत्र नहीं बोलना बस पिता के सामने बैठ जाना है । चाहे पढ़े लिखे हों, चाहे अनपढ़ हों सब बड़ी सहजता से गहरे ध्यान में उस अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं । वहाँ जाकर हमारी सारी समस्याओं का समाधान हो जाता है ।

चौथी चीज है सब धर्म से अलग-धर्मनिर्पेक्ष। इसका इतिहास आप देखें । गुरु महाराज प्रदत्त साधना धर्मनिर्पेक्षता का एक उदाहरण है । इस्लाम धर्म के सूफी मत की विचार धारा में एक महापुरुष का अवतरण हुआ । उस मत में उनके बीच प्रचलित साधना के बारे में यह विचार था कि सूफियों की यह चीज है । साधना एक सीमा में बंध गई है । अत: उन्होंने इसे सर्वग्राह्यी करने के लिये किसी हिन्दू को देने की सोची । वह महा:पुरुष थे जनाब फजले अहमद साहब जिन्होंने महात्मा रामचन्द्रजी महाराज को यह चीज दी और आदेश दिया किसी हिन्दू को यह साधना देनी है । साथ-साथ इसमें इस्लाम का कोई नाम न रह जाये । यह नहीं मालूम पड़े कि यह साधना इस्लाम से आई है या कहीं बाहर से आई है क्योंकि यह भारत की चीज है । ''आज मैं आपको इसे सौंप कर अपने ऋण से मुक्त हो रहा हूँ इसे आप अपने हिसाब से तैयार करें ।'' और उसमें हमारे गुरु महाराज जिन्होंने अनेकों शास्त्रों का अध्ययन कर शास्त्रों अनुसार यह साधना हमें दी । वह महापुरुष किस लोक से आये थे, किस अवस्था के थे हम अनुमान नहीं लगा सकते । उन्होंने अन्धकार से प्रकाश में, अज्ञान से ज्ञान में जाने की साधना समाज को दी । ज्ञान एक प्रकाश है । प्रकाश में हम सब एक हैं । सबसे प्रेम । ''सर्वेभवन्तु सुखिन: सर्वेसन्तु निरामया:'' कहने की बात नहीं होगी । गुरु महाराज द्वारा प्रदत्त साधना आपके हृदय का मंथन कर देती है । आप की क्षमतायें प्रकट होती जायेंगी और आप खुद देखेंगे कैसा जीवन व्यतीत कर रहा था, गंदगी में लिप्त था, राग, द्वेष घृणा थी लोगों के लिये पर अब पूर्ण पवित्र हूँ, एक अजीब आनन्द में डूबा रहता हूँ, हृदय में शान्ति और सबके लिये प्रेम । यहाँ पराया कोई नहीं । जीवन का ध्येय प्राप्त कर जायेंगे । हमारे गुरु महाराज ने एक सरलतम् साधना समाज के सामने रखी । गुरु महाराज की साधना बिना मौखिक उपदेश या प्रवचन के वह ज्ञान देती है कि हिन्दू, सिक्ख, इस्लाम, इसाई व बौद्ध आदि के समस्त अनुयायी अपने लक्ष्य को और अपने वास्तविक स्वरूप को पा सकते हैं वह भी बड़ी सरलता से इसी जीवन में, इसी घर-गृहस्थी में, इसी परिवेश में ।

✦✦✦

प्रवचन-पराग :-

ज्ञान और भक्ति

– परम भागवत परम संत पं. मिहीलाल जी

[बात चाहे जिस भी साधना पद्धति की हो–उसके मूल में श्रद्धा व विश्वास होंगे, पुष्प होंगे ज्ञान और भक्ति, फल होगा प्रभु दर्शन–आत्मज्ञान–सं.]

रैन का भूषण इन्दु है, दिवस का भूषण भानु ।
दास का भूषण भक्ति है, भक्ति का भूषण ज्ञानु ।।

भक्ति के बिना मनुष्य का हृदय उसी प्रकार है जैसे बिना पानी का बहुत बड़ा तालाब । भक्ति श्रद्धा की मूल है । बिना भक्ति के किसी के प्रेम को पाना दुर्लभ है। प्रभु प्रेम को पाने के लिए भी श्रद्धा और भक्ति दोनों की आवश्यकता है । श्रद्धा और भक्ति दोनों ही का अन्तिम लक्ष्य सेवा है। अत: ज्ञान प्राप्ति के साधन में तीन बातों की आवश्यकता है- प्रणाम, सेवा और प्रश्न । प्रणाम और सेवा दोनों ही का स्वरूप श्रद्धा से है । फिर ज्ञान प्राप्ति के हेतु जहाँ भी जिस गुरु के पास जाय यह तीन कार्य करने होंगे । प्रथम उनको प्रणाम करो, फिर कुछ समय सेवा करो, तब अपने प्रश्न को रक्खो । अत: भक्ति के साथ-साथ ज्ञान की भी पूर्ण आवश्यकता है । बिना ज्ञान के भक्ति उसी प्रकार है जैसे मूर्ख सेवक की सेवा या चालाक और काम निकालने वालों की चालाकी । यह चालाकी और सकाम सेवा, सेवा नहीं वह तो एक दुकानदारी है जिसको अवसरवादी किया करते हैं, जो एक दिखावा और ढ़ोंग है । ऐसी सेवा से कोई प्रसन्न नहीं हो सकता वरन् लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं । आज ऐसी दिखावटी और ढ़ोंग की सेवा का थोड़ा निरीक्षण करिये ।

समाचार पत्रों में ऐसे बहुत से चित्र निकलते देखे होंगे कि अमुख नेता या अमुक महोदय हाथ में झाड़ू लेकर किसी गली या बाजार की सफाई कर रहे हैं । कहीं हाथ में फावड़ा लेकर श्रमदान कर रहे हैं । यह एक अजीब तमाशा है । बहुत से लोग साथ जाते हैं वहाँ वह नेता अपने सुसज्जित वस्त्रों में खड़े होते हैं, लोग एक झाड़ू उनके हाथ में देते हैं या कहीं एक फावड़ा उन्हें पकड़ा देते हैं। एक फोटो ग्राफर वहाँ तैयार रखा जाता है । नेता जी थोड़ा झुककर बुहारी को पृथ्वी पर छुआते हैं कि फोटो ले लिया जाता है । बस, काम समाप्त हो गया, समाचार पत्रों में वह फोटो आ गया, सारे विश्व में फैल गया कि अमुक नेता देश की सेवा कर रहे हैं, सर पर डलिया रख के श्रमदान कर रहे हैं । अरे, एक छण भी सेवा नहीं की और देशभर में नाम फैलाया। यह कितना पाप है? कितना धोखा है? क्या वह नेता इस अपराध से बख्सा जायगा ? इसलिए जिस काम में श्रद्धा नहीं वह ढ़ोंग है, उसका मूल्य कुछ नहीं। ऐसा धोखा देने वाले लोग समझते हैं कि हमने लोगों को खूब धोखा दिया और उससे बहुत लाभ उठाया, परन्तु ठीक समझो कि वह धोखा और

को नहीं दिया अपने को दिया और लाभ की जगह हानि उठाई ।

भक्ति और श्रद्धा सम्पन्न साधक किसी को धोखा नहीं दे सकता, वह आडम्बर से बचता है। अपने फोटो और चित्र खिंचवाने की उसे आवश्यकता नहीं होती, वह तो करता है अपने प्रभु का काम, वह भी छुपकर। प्रभु से मिलाने वाली एक ज्ञान युक्त भक्ति ही है जो भक्त के हृदय को धीरे-धीरे निर्मल बनाकर प्रभु दर्शन का अधिकारी बना देती है । इसलिए भगवान ने कहा है भक्तों में मुझे ज्ञानी भक्त और भी प्यारा हैं।

कहते हैं कि किसी शहर में एक बहुत निर्धन मनुष्य रहता था परन्तु था विद्वान और श्रद्धावान! उसकी इच्छा हुई कि किसी प्रकार राजा का दर्शन करें, उसकी संगति में बैठें । परन्तु न तो इसके पास सुन्दर वस्त्र थे, न कुछ देने के लिए भेंट, मन मारकर रह जाता था । एक दिन उसे एक युक्ति सूझी, उसने तलाश कर लिया कि महाराज प्रात: चार बजे उठकर घूमने जाया करते हैं । बस उसने वह मार्ग जहाँ होकर राजा जाते थे, झाड़ना प्रारम्भ कर दिया, आज जब महाराज निकले तो मार्ग स्वच्छ था । इस प्रकार नित्य वह उनके जाने से प्रथम ही झाड़ देता था । कई दिन जब राजा ने यह देखा तो सोचा कोई गरीब आदमी धन के लिए ऐसा करता है । अत: एक दिन आपने एक छोटा सा हीरा वहाँ रात को डाल दिया, वह झाड़ने आया और हीरा उठाकर ले गया, उसे बेच कर अच्छा मकान बनवाया, वस्त्र आदि की सुन्दर व्यवस्था की, परन्तु झाड़ना नहीं छोड़ा। राजा ने दूसरा हीरा डाला, वह भी ले गया, इस प्रकार वह खूब मालदार हो गया। परन्तु झाड़ना फिर भी नहीं छोड़ा । अबकी बार राजा ने कुछ पहरेदारों को लगाया कि यह कौन आदमी है जो रोज झाड़ता है, हमारे सामने लाओ । अब क्या था, पहरेदारों ने उसे पकड़ा और राजा के सामने दरबार में उपस्थित कर दिया ।

राजा ने कहा- तुम्हें इतना धन दिया गया फिर भी तुमने यह झाड़ना क्यों नहीं छोड़ा ?

महाराज! यह काम मैंने धन के लालच से नहीं किया था । वह तो आप की दैन थी । मेरा ध्येय था केवल आपके दर्शन पाना । संसार की सारी वस्तुएँ मिल जायँ लेकिन जब तक प्यारा न मिले, तब तक कर्म त्यागना ही क्यों ? आज उसी कर्म ने तो आपका दर्शन कराया है । धन सम्पत्ति पाकर यदि में बैठ रहता तो आप का दर्शन कैसे पाता? राजा प्रसन्न हो गया और उसका नाम दरवारियों में लिख लिया गया । अन्त में वह राजा को इतना प्रिय लगा कि सब काम उसके ऊपर ही डाल दिया ।

अपनी ही श्रद्धा दूसरे के हृदय में श्रद्धा पैदा कर देती है । श्रद्धा के ऊपर ही ज्ञान का स्थान है । जब गुरु के प्रति शिष्य की पूर्ण श्रद्धा हो जाती है तो फिर उसका विश्वास भी अटल हो जाता है । विश्वास के आते ही शिष्य अपना समर्पण गुरु के प्रति कर देता है और तभी गुरु शिष्य के अन्त:करण को अपने अन्त:करण से मिलाता और अपना सारा ज्ञान तथा सम्पूर्ण शक्तियाँ शिष्य के अन्त: करण में डाल देता है । यह क्रिया तब तक नहीं हो सकती जब तक कि शिष्य अपने को गुरु के समर्पण नहीं कर देता । इस क्रिया के करने में ही देर लगती है आगे ज्ञान आने में देर नहीं लगती । पहिले हम गुरु को

अपने अन्तः करण में लावें, फिर आगे गुरु शिष्य को अपने अन्तःकरण में स्थान देता है । बस वह शिष्य धन्य है जिसको गुरु ने अपना लिया, फिर वही मालामाल भी हो गया । इसमें शिष्य को कुछ करना नहीं, केवल सब तरफ से चित्त हटाकर उनकी ओर देखना ही है । सारी साधना का तत्व ही यही है कि मनुष्य संसार के सब सुखों से मुँह मोड़कर ईश्वर की ओर लगा दे ।

यही भक्ति है, भक्ति एक ऐसा सुन्दर गुण है कि दूसरे को लाचार कर देता है । भक्ति से मनुष्य तो क्या ईश्वर भी प्रसन्न हो जाता है । ज्ञान प्राप्ति का एक ही उपाय है भक्ति । जब हम गुरु को पहिचान लें, उस पर पूर्ण श्रद्धा भक्ति ले आवें तो ज्ञान का रुका हुआ स्रोत खुल जाता है । मैंने यह अपनी आँखों देखा है कि जब शिष्य का अन्तःकरण गुरु के अन्तःकरण के समीप पहुँचता है तो गुरु उसमें अपनी सारी शक्तियाँ डाल देता है। शिष्य मांगता नहीं, परन्तु गुरु अपनी धन राशि को भी तो कहीं रखे। चाहे उसके सहस्त्रों शिष्य हों, पूर्ण विद्वान और आज्ञाकारी भी हों, परन्तु फिर भी वह जिसके हृदय में रखना चाहें, रख दें । श्री रामानन्द जी ने यह वस्तु कबीर साहब और रैदास साहब को सुपुर्द की, श्री माधवाचार्य जी ने नेत्रहीन शिष्य विल्वामंगल (सूरदास) के हृदय में रक्खी । चरणदास जी ने यह ज्ञान-रत्न सहजोबाई को सौंप दिया, श्री रैदास जी ने यही ज्ञान का भण्डार मीराबाई के हवाले किया । बहुत से मुसलमान सन्तों ने किसी हिन्दू शिष्य को भी सौंप दिया । सन्त न तो पुत्र देखते हैं, न कुटुम्ब, न ब्राह्मण देखते हैं, न शूद्र । न विद्वान देखते हैं, न अनपढ़ । जिस पर कृपा कर दें वही पूर्ण हो जाता है । कहते हैं श्री नाभा जी डोम जाति के थे परन्तु गुरु ने उनकी भक्ति से प्रसन्न हो अपना उत्तराधिकारी उन्हें ही बनाया । इन सब उदाहरणों से यही ज्ञात होता है कि ज्ञान-प्राप्ति का एक ही साधन है "गुरु-भक्ति" ।।

✦✦

पत्र-प्रकाशक

[नववर्ष आप सबके लिए शुभ हो, पूज्य गुरुदेव का यह पत्र ......]

प्रिय.......।

रामाश्रम-एटा

16-7-49

प्रेम पत्र मिला । धन्यवाद है कि जिन अवस्थाओं को तुम कभी गीता में पढ़ा करते थे उन्हें अब अनुभव कर रहे हो यही धर्म है । मालिक के आश्रय अपने को छोड़ देना और किसी प्रकार की चिन्ता अपने लिए न रखना ही कर्त्तव्य है । दृष्टा बन के व्यवहार करता चले, मैं और मेरे से अलग होता जाय, इसी अवस्था पर पहुँचना साधन का फल है

शेष प्रेम ।

हस्ताक्षर

परम पूज्य श्री गुरुदेव

सुधा-सार :-

साधना में सफलता के नियम और परहेज

– युग पुरुष परम संत श्री हेमेन्द्र कुमार जी

गुरु महाराज की बताई हुई योग साधना में सफलता के लिए कुछ नियम और परहेज अपनाने पड़ते हैं तभी सफलता मिलती है। सबसे प्रथम यह आवश्यक है कि साधना को नियम-पूर्वक प्रातः और सायंकाल हम लोग करें । हमारे यहाँ साधक को प्रथम दिन ही गुरु या भगवान के समक्ष बिठाल देते हैं । हमारे लाभ के लिये कुछ जरूरी बातें हैं- गुरु के प्रति श्रद्धा, विश्वास, भक्ति और सबसे महत्वपूर्ण है प्रेम । साथ ही साथ एक दूसरी चीज भी जरूरी है कि हमको यह विश्वास हो कि हमारे गुरु हमारे पास मौजूद हैं । यही उपासना का साधन है । जब तक यह एहसास हमारे अन्दर पैदा नहीं होगा तब तक हम अनेक व्याधियों से घिरे रहेंगे और साधना में भी हमको वह सफलता प्राप्त नहीं होगी जो होनी चाहिये । दूसरी बात यह है कि भण्डारों में भी हम जिस ध्येय को लेकर आते हैं उसकी पूर्ति में लगे रहना चाहिये । हमारा समय भी नष्ट होता है, आने में कष्ट भी होता है, खर्चा भी होता है, फिर यहाँ आकर इधर-उधर की बातों में अगर हम लगे रहे तो ठीक नहीं । हमारा कर्त्तव्य है कि हर समय गुरु का ध्यान रखें उनकी सेवा करें, साथ ही साथ जितने भी प्रेमी भाई आये हैं सबको गुरुमय देखें और उनके आराम का तथा दूसरी बातों का ध्यान रखें । इससे हमको भी लाभ होगा और हर समय हमारी सुरति गुरु की ओर लगी रहेगी जो बहुत ही आवश्यक है ।

एक बात मैं और कहना चाहूँगा कि बड़े भइया (परम सन्त श्री बृजेन्द्र कुमार जी) ने लोकल सत्संग का एक विचार दिया था । विचार बहुत ही सुन्दर था लेकिन अब उसमें कुछ संशोधन कर लिए गए हैं । हम प्रोग्रामों को दो में विभाजित कर सकते हैं । एक भण्डारे तथा दूसरे मिनी भण्डारे जिसमें तीन या चार समय साधना होती है, इसके अतिरिक्त साधक अकेले बैठकर भी साधना करते हैं और साप्ताहिक सत्सङ्गों में भी जाते हैं । सभी समय जब भी साधना की जाय महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि गुरु शक्ति और गुरु कृपा के सहारे यह साधना चलती है । साधक तो केवल द्रष्टा होता है ।

अनुभव यह भी बतलाता है कि जो प्रातः काल की पूजा होती है उसमें मन अधिक ध्यान में लगता है, ध्यान गहरा जाता है । उसका कारण है कि प्रातःकाल जब हम सोकर उठते हैं हमारा मस्तिष्क टेन्शन रहित होता है । विचारों का द्वन्द्व मस्तिष्क में नहीं होता इसीलिए हम जैसे ही बैठते हैं गुरु शक्ति वहाँ पर व्याप्त होती है और हम गहरे ध्यान में चले जाते हैं । अब आप सुबह का सत्संग लीजिए जो प्रोग्राम में होता है, उसमें 7।। बजे का समय दिया है जिसमें भजन व प्रवचन के बाद

लगभग एक घण्टे का समय लग जाता है । साधक लोग तब तक बैठे रहते हैं उम्र बढ़ रही है, रोग बढ़ रहे हैं । घुटनों में दर्द-होने लगता है । शरीर के किसी भी अङ्ग में अगर पीड़ा हो तो ध्यान नहीं लग सकता है । ऐसा कम से कम मेरा तो अनुभव है। इसलिये गुरुजनों से मेरा नम्र निवेदन है कि अगर इसका समय घटाकर पहले साधना कर ली जाय और उसके बाद उसके बारे में साधकों को बता दिया जाय तो कोई फर्क नहीं होगा ।

एक बात और भी आवश्यक है कि प्राय: सभी को खासतौर से साधकों को तीन चीजों से बचना चाहिए- अहङ्कार, बनावट और डबल करेक्टर । अहङ्कार खासतौर से सूक्ष्म अहङ्कार गुरुकृपा से ही समाप्त होता है । डबल करेक्टर कहते हैं कि अन्दर कुछ और बाहर कुछ । यह बहुत ही हानिकारक चीज है । हम अगर इधर बढ़ रहे हैं तो हमारे दिल और जुवान में कोई फर्क नहीं होना चाहिए । प्रयत्न यह करना चाहिये कि हम अन्दर और बाहर से एक दीखें । रही बनावट की बात तो बनावटी पुरुष ईश्वर को कभी प्राप्त नहीं कर सकता। गुरु महाराज एक दृष्टान्त दिया करते थे कि एक साहब ने अपनी आत्म कथा में लिखा कि एक जगह भण्डारा हो रहा था मैं भी अपने वालिद के साथ वहाँ गया । जहाँ उनकी सीट थी उन्हीं के पास मैं भी बैठ गया । बहुत से महात्मा सन्त वहाँ आये । कोई हवा में उड़ता हुआ आया। कोई हाथी पर बैठकर आया । किसी के साथ सैकड़ों शिष्य थे । कोई प्रकाश में चमकता हुआ आया। सबकी सीटें मुकर्रर थीं, सब अपनी-अपनी जगह बैठ गये । आखिर में एक सन्त आए जो बुड्ढे थे, लाठी टेकते हुए, खड़ाऊँ पहने हुए आये। सब लोग अदब से खड़े हो गये । उनको वहाँ पर प्रधान का आसन दिया गया ।

मैं बच्चा था । मुझको बहुत ही ताज्जुब हुआ कि ऐसे-ऐसे महात्मा लोग आये और इस मामूली से आदमी को प्रधान की कुर्सी मिल गई । मुझसे जब्त नहीं हुआ मैंने अपने वालिद से वहीं पूछा कि इसके क्या सबब हैं। उन्होंने कहा बेटा अच्छे सन्त की पहचान ही यह है कि उसमें बनावट न हो । एक और बात भी मैं सभी से कहना चाहूँगा कि गुरु बनने की रेस में शामिल न हों बल्कि शिष्य बनने की रेस में शामिल हों । एक आदर्श एक पूर्ण शिष्य ही गुरु बन सकता है और हमारा परम कर्त्तव्य है कि जब तक हम एक शिष्य नहीं बने तब तक हमें गुरु कृपा हरगिज प्राप्त नहीं हो सकती । इसके अतिरिक्त जो सन्तों की महफिल के अदब हैं, जो कायदे हैं उनके ऊपर भी हमको ध्यान देना चाहिए । अपने बुजुर्गों की इज्जत और छोटों को प्यार बहुत ही आवश्यक है । एक बात मैं और कह दूं कि डायस पर बैठकर कोई सन्त नहीं बन जाता । सन्त तो गुरु कृपा और अपने अन्तर को सुधारने से ही बनता है। इसलिए बुजुर्गों का लिहाज करते हुए डायस का भी डेकोरम मेन्टेन करें ।

गुरु महाराज की बताई पद्धति के अनुसार उस गङ्गा में स्नान करते रहें । उनके हृदय से जो प्रकाश रूपी गङ्गा की धार निकल रही है उसमें स्नान करते रहें। साथ ही साथ प्रार्थना करते रहें कि हम पर भी कभी नजर डाल दें और प्रतीक्षा करते रहें । गुरु महाराज हम सबका कल्याण करें और हम सबको गुरु कृपा प्राप्त हो। ✦✦

अनन्यता का भाव

– संत श्री ओम प्रकाश 'विरल' जी

राजयोग में साधना का क्रम मनोमय कोश से शुरू होता है । नीचे के दो कोशों का सम्बन्ध हठयोग से है । मन में संकल्प-विकल्प रहते हैं, इनके उठते हुए साधक शान्त चित्त नहीं हो सकता और न उस निर्मल ज्ञान को प्राप्त कर सकता है । इसलिए उसे संकल्प-विकल्प वाली मनोमय भूमिका से आगे जाना होता है । उसके पश्चात् वह बुद्धि के क्षेत्र में पहुँचता है जिसे शास्त्रों की भाषा में विज्ञानमय कोश का नाम दिया गया है । इस भूमिका में विचार प्रधान रहता है । कोई न कोई विचार साधक के सामने अटक जाता है और वह स्वयं उससे आगे निकल नहीं पाता परन्तु उस आत्मा में कोई विचार नहीं है, इसलिए उसे इस क्षेत्र से आगे अवश्य जाना होता है । उसके आगे आनन्दमय कोश है जहाँ वृत्ति निवास करती है । वृत्ति विकार की तरंग है जो केवल साधक की समझ में आती है । साधारण मनुष्य तो केवल विचार को ही पकड़ पाता है । चित्त रूपी सरोवर को शान्त करने के लिए वृत्ति रूपी तरंगों को शान्त करना होगा तभी उस आत्मा से योग हो सकता है । इससे तात्पर्य यह है कि आत्मा एक शक्ति है जो विचार या वृत्ति के रहते हुए ठीक से अनुभव नहीं की जा सकती । इसीलिए इन तीनों कोशों से आगे पहुंचने पर आत्मानुभव बताया जाता है । यही तुरीय ज्ञान है ।

वृत्ति को शान्त कर लेना आसान काम नहीं । साधना में प्रवेश करते समय साधक के सामने साधक, साधना और साध्य की त्रिपुटी रहती है । धीरे-धीरे वह एक पर आता है । उस एक को अनुभव करने वाला अहं है । उसके रहते एक का भी बोध न हो, यह नहीं हो सकता । इसलिए अहं को सन्तों ने वृत्ति का रूप दिया है । अहं स्वयं एक वृत्ति है और उसका नाश अंह नहीं कर सकता। 'मैं नहीं हूँ' ऐसा कौन कह सकता है और कैसे यह माना जा सकता है । 'मैं नहीं हूँ' इसका अर्थ है 'मृत्यु' । इसलिए मृत्यु के आये बिना अहं का नाश नहीं हो सकता और तभी परम आनन्द की प्राप्ति हो सकती है । श्री कबीर साहब कहते हैं:-

जा मरने से जग डरे मोहि बड़ा आनन्द ।
कब मरिहों, कब पाइहौं, पूरन परमानन्द ।।

परन्तु इस मरने का अर्थ सन्तों ने समझा है । शरीर त्याग उनके मन से मृत्यु नहीं है बल्कि शरीर रहते हुए मृत्यु की अवस्था में चले जाना, योगी की सच्ची मृत्यु है । वहीं वृत्तियों का क्षय होता है, इससे पूर्व नहीं ।

हम कह सकते हैं कि वह 'मृत्यु' कैसे हो । यह तो ऐसी बात है जो न सुनी, न देखी, पर है यह सत्य और आत्मानुभव के लिए आपको भी उस दशा में जाना होगा ।

अपने अहं का नाश हो जाना मृत्यु है, ऐसा समझिये । इस अहं को नष्ट करने के लिए यह भी समझ लीजिये कि यह नष्ट नहीं होता है । वरन किसी में विलीन होता है, 'आपा' 'समा' जाता है, यह इसका उपाय है । यह आपा उसी में

लीन होगा जिसे वह प्यार करेगा, चाहेगा, इसीलिए यहाँ भक्ति की जरूरत पड़ती है । ज्ञान का मार्ग उस स्थिति में ले जा नहीं सकता, और आप जानते हैं कि वह भक्ति बिना सन्त के किसी को आज तक मिली नहीं । गुरु के शरण जाए बिना किसी को भी इस अवस्था का अनुभव नहीं हुआ । इसीलिए साधना में गुरु की परम आवश्यकता होती है । गोस्वामी जी ने तो यहाँ तक कह दिया कि :-

गुरु बिनु भव निधि तरइ न कोई ।
जो विरंचि संकर सम होई ।।

इतना ही काफी नहीं कि साधक किसी को गुरु धारण कर ले । उस पुरुष विशेष में उसकी आस्था इतनी दृढ़ होनी चाहिए कि उसके सिवा उसे दूसरा कोई नजर ही न पड़े । उसे यह पक्का विश्वास होना चाहिए कि मेरा कल्याण इसी के द्वारा होना है । मेरे ही लिए यह धरती पर अवतरित हुए हैं । ऐसा दृढ़ विश्वास ही साधक को गुरु का कृपा-पात्र बनाता है । एकलब्य ने यह जान लिया था कि गुरु द्रोणाचार्य से ही वह अस्त्र विद्या सीख सकता है, इसलिए उनके स्वीकार न किए जाने पर भी वह मूर्ति में ही गुरु को वरण कर बैठा । श्री कबीर को यह पता चल गया था कि स्वामी रामानन्द से ही उनका उद्धार होना है, इसलिए उनकी करुणा जगाने के लिए वह घाट की सीढ़ियों पर जा पड़े जिससे उनके चरण उन पर पड़ जायें । श्री रामानुजाचार्य को यह निश्चय हो गया था कि उनका कल्याण श्री यवनाचार्य जी... से ही होना है इसलिए वे सारे पांडित्य की गरिमा को भूलकर उनके चरणों में जा गिरे । यह ज्ञान जब भी जिसको मिला है, ऐसे ही मिला है। तुलसीदास जी ने साफ कह दिया है-

एक भरोसो, एक बल, एक आस विश्वास ।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास ।।

इस अनन्यता और एक निष्ठा के बिना अन्तिम वृत्ति का शान्त होना असम्भव है । इसलिए हम भगवान् से न केवल सद्गुरु प्राप्त करने की प्रार्थना करें वरन् उनके चरणों में अनन्य अनुराग और अटूट विश्वास भी माँगें । यदि ऐसा हो जाय तो फिर काम बना बनाया है । ✦✦

आलोक किरणें

- शिष्टाचार के अर्थ सभ्यता के हैं, उर्दू भाषा में इसी को ''अखलाक बोला जाता है । साधक का व्यवहार दूसरों के प्रति श्रेष्ठ और उत्तम होना चाहिए । उसे अहंकारी न बन सबका आदर सत्कार करना चाहिए, दूसरों से घृणा करना, दूसरों के लिए अपशब्द निकालना महापाप है।
- अपनी जरूरतों को कम करो, जीवन को सादगी दो, बढ़िया कपड़ा और अधिक जेवर की ओर से चित्त को मोड़ लो फिर देखो कि चिन्ता कैसे तुम्हारे समीप आती है । मत परवाह करो इस बात की कि लोग तुम्हें क्या कहेंगे, सुसाइटी किस नजर से तुमको देखेगी । यदि तुम उसूलों (नियमों) के पक्के हो यदि तुम्हारी प्रतिज्ञा दृढ़ है तो समय आवेगा कि लोग तुम्हारे कदमों को चूमेंगे और तुम्हारे पीछे चलने वाले बनेंगे । इस तरह तुम केवल अपने ही को नहीं बल्कि सहस्त्रों स्त्री-पुरुषों को शोक सागर से निकालने वाले बन सकोगे । **-परम पूज्य गुरुदेव**

विनय

हे दयामय दृष्टि करुणा की इधर को कीजिए ।
प्रण तुम्हारा पतित पावन सुध पतित की लीजिए ।।
भूमि पर देखे सुने जो संत सद्गुरु वेष में ।
एक प्रभु थे आप अद्भुत गुरु गृहस्थी भेष में ।।
करके लीला सद्गुरु की शिष्य बनके धरनि पर ।
वारिज नयन दर्शन दिखाया छवि मनोहर अवनि पर ।।
रसना से बरसाया अमृत पी के गद्गद् हो गए ।
होय हर्षित पुलक तन-मन सुधि बदन की खो गए ।।
दे दिया दरबार का दीदार तुमने दीन को ।
खल कुटिल अविनीत मोसे पतित अति मति हीन को।।
लेखनी लिख सकती नहीं है तेरी गुण विरदावली ।
तेरी लीला थी अनुपम मोहनी चरितावली ।।
इस जीवन की झीनी नौका के तुम ही खेवनहार हो ।
सरित भव के बीच भंवर में एक तुम्हीं रखवार ।।
दी शिलायें लाख तूने तार निज पद रेनु से ।
नहीं विलग रह सकता है अब बच्छ जिमि माँ धेनु से ।।
कीन्हीं कृपा तुम दीन जन पै दरश दे घर-घर पै जा ।
ओ गरीबों के मसीहा अब दरश दो हिय में आ ।।

◆◆

मोहान्धकार और उपचार

– श्रीमती गीता सिंह

श्री रामचरित मानस में आया है कि मोह सकल मानसिक व्याधियों का मूल है । इसी से काम रूपी वात, लोभ रूपी कफ और क्रोध रूपी पित्त की उत्पति होती है । जब ये तीनों भाई कफ, वात और पित्त एक साथ मिलकर आते हैं तो जान लेवा सन्यपात रोग उत्पन्न हो जाता है जिसके बाद जीवात्मा निराश और असहाय हो जाती है । जीवात्मा के लिये मोह से बढ़कर घातक कुछ भी नहीं है । पहले आदमी का किसी वस्तु, व्यक्ति या विचार से सम्बंध स्थापित होता है, फिर आसक्ति होती है और आसक्ति से मोह उत्पन्न होता है । आसक्ति और मोह प्राय: एक ही चीज है। आसक्ति हमें एक सीमित दायरे में घेर देती है। जब हम किसी चीज को जरूरत से ज्यादा चाहने लगते हैं, उससे हटने का नाम नहीं लेते, अंधे बनकर उस पर अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं तो इसी को आसक्ति या मोह कहा जाता है । इसमें हमारा सच्चा ज्ञान लुप्त हो जाता है, संतुलन बिगड़ जाता है, और हम न्याय नहीं कर पाते, न अपने प्रति, न अपने लक्ष्य के प्रति । आदमी अंधों की तरह व्यवहार करता है ।

महाराज धृतराष्ट्र आँख से अँधे थे, मगर बुद्धिमान थे, ज्ञान भरपूर था, परन्तु पुत्र मोह में सारा ज्ञान, सारी समझदारी धरी की धरी रह जाती थी । वह जैसे बाहर से अँधे थे, वैसे ही अन्दर से भी हो जाते थे । मोह ग्रस्त होकर आदमी ज्ञान रहते हुए भी मूर्ख की तरह व्यवहार करता है । द्रौपदी जिस सभा में निर्वस्त्र की जा रही थी, उस सभा में सबके दादा ज्ञानी भीष्म पितामह भी उपस्थित थे, मगर विरोध करना तो दूर वे एक शब्द भी बोल न सके । कारण कि वे अपनी प्रतिज्ञा से चिपके हुए थे कि मैं जीवन भर हस्तिनापुर के सिंहासन की रक्षा करूँगा । अर्थात् उस सिंहासन पर जो भी होगा, जैसा भी होगा, निंदनीय कार्य करेगा तब भी उसके विरुद्ध नहीं जाऊँगा । इसलिये उन्होंने मोह वश अपनी प्रतिज्ञा की तो रक्षा की मगर एक अबला की इज्जत लुटती हुयी चुपचाप देखते रहे । मोह वश सारा ज्ञान लुप्त हो गया था । दूसरी तरफ भगवान कृष्ण ने भी प्रतिज्ञा कर रखी थी कि मैं युद्ध में पाण्डवों के पक्ष में तो रहूँगा, मगर हथियार नहीं उठाऊँगा, लेकिन समय आने पर उन्होंने हथियार भी उठाया । उनमें आसक्ति या मोह का नाम नहीं था । जब तक गोकुल में रहे, घर-घर दही-मक्खन खाये, गोपियों के साथ नाचा, गाया, महारास किया, सबसे खूब प्रेम किया, मगर एक बार मथुरा गये तो फिर उधर मुड़ के भी नहीं देखा । ऐसा लगा जैसे गोकुल से कोई नाता ही नहीं ।

गोपियाँ बुलाती रहीं, माँ यशोदा बुलाती रहीं, मगर वह निर्मोही बनकर सब सुनते रहे, सब देखते रहे ।

यह मोह माया की प्रबल शक्ति है । यह कहीं भी, कभी भी किसी पर भी अपना प्रभुत्व जमा सकती है । इसने बड़े-बड़े लोगों को नचाया है, जिसे सुनकर सहसा विश्वास नहीं होता, मगर बात सच्ची है । जगद्‌गुरु भगवान शिव की धर्म पत्नी माँ सती को मोह ने आ दबोचा तो वह कहने लगीं कि एक राजकुमार भगवान कैसे हो सकता है, और वह नारी के वियोग में जंगल-जंगल मारा क्यों फिरेगा ? भगवान शिव के भी कहने-समझाने का कोई असर नहीं हुआ । वह अपनी बात पर अडिग रहीं और ज़ो कुछ हुआ यह सभी जानते हैं। उन्हें वह शरीर छोड़ना पड़ा दूसरा जन्म लेना पड़ा और भी पक्षीराज गुरुड़देव जी जिसकी पीठ पर सवार होकर स्वयं विष्णु भगवान चला करते हैं, वह भी इस मोह के फँदे में फँस गये । भगवान राम-लक्ष्मण को नागपाश से मुक्त करने के बाद यह स्वयं इस जाल में फँस गये । कहने लगे-कहाँ भगवान कैसा भगवान ? वह भगवान क्या जो अपना बंधन भी न काट सके ? वह भला दूसरों का बंधन क्या काटेगा ? वह परेशान होकर देवर्षि नारद के पास गये, ब्रह्मा जी के पास गये, मगर शान्ति नहीं मिली । आखिर में भगवान शिव के पास गये और उन्होंने उन्हें गुरु कागभुशुंडी के सत्संग में भेज दिया, जहाँ उन्हें पूर्ण समाधान प्राप्त हुआ । इस तरह यह किसी को भी अपना शिकार बना सकता है । देवर्षि नारद और ब्रह्मा तक इससे मात खा चुके हैं तो और किसकी बात की जाय ।

महात्मा रामकृष्ण परमहंस को भी माँ की साकार प्रतिमा से मोह हो गया था । वह माँ के साकार रूप से बातें भी करते थे, दर्शन भी करते थे और उन्हीं को सर्वस्व मानकर समर्पित हो चुके थे । निराकार स्वरूप को भूल चुके थे । इसलिये अब दूसरे ईश्वर का प्रश्न ही नहीं था न उसकी तलाश थी । वह यहीं ठहर गये थे । मगर अन्तर्यामी गुरु तोताराम जी ने जान लिया कि एक माँ का महान भक्त मोह ग्रस्त हो गया है । उसका मार्ग अवरुद्ध हो गया है और यहीं पड़ा रहा तो इस जन्म में पार नहीं हो सकता । वह बिना बुलाये ही भक्त के दर्शनों को गये और उन्हें बड़ी मुश्किल से आगे बढ़ाया, साकार के घेरे से निकाल कर निराकार का बोध कराया । वह कहते थे कि मैं उस माँ को कैसे छोड़ दूँ जो मेरे सामने है, जो मुझसे बातें करती है, मुझे इतना प्यार करती है । ईश्वर तो यही है, बिना आकार वाली माँ कैसी ? मगर गुरु ने बड़े परिश्रम और बेदर्दी से उनके हृदय से यह मोहरूपी काँटा निकाला, एक माँ से एक पुत्र को विलग किया और माँ के सर्वव्यापी रूप में उन्हें प्रतिष्ठित किया । जब भक्त एक छोटे दायरे से निकलकर असीम आकाश में पहुँचा तो खुशी का ठिकाना न रहा । उसने गुरु को बार-बार धन्यवाद दिया, वह उन पर फिदा हो गया । इसी तरह शिष्य के कल्याण के लिये गुरु कभी-कभी कठोर और निर्मोही बनकर व्यवहार करता है । ✦✦

पूज्य गुरुदेव का यही संदेश है, यही आदेश है कि स्थूल में ही मत रुक जाओ । ईश्वर निराकार है, सर्वव्यापक है। वह शक्ति स्वरूप है, नाम और रूप से परे है। उसी तक पहुँचना, उसी में मिलना हमारा ध्येय है। हम जो स्थूल मूर्ति का आधार लेते हैं, वह उतने ही समय के लिये है जब तक निराकार की पकड़ नहीं हो पाती । वह कहते हैं कि गुरु की स्थूल मूर्ति का ध्यान करना सबके लिये लाजिमी नहीं है । जिनकी बुद्धि इतनी स्थूल है कि वे सूक्ष्म को नहीं पकड़ पाते उन्हीं को स्थूल रूप का ध्यान प्रारंभ में बताया जाता है । फिर स्थूल को त्यागकर सूक्ष्म में बढ़ना होता है । जो लोग स्थूल के मोह में पड़कर जीवन भर उसी से चिपटे रहते हैं, उनकी उन्नति नहीं हो पाती । वह कहते हैं कि साकार का जो दर्शन है, वह हमारी कल्पनाओं और मान्यताओं का दर्शन है, वास्तविक दर्शन नहीं है । इसलिये साधकों को इस नाम रूपवाले दर्शनों के मोह में नहीं पड़ना चाहिये, चाहे वह दर्शन गुरु की स्थूल मूर्ति का हो या ईश्वर की कल्पित मूर्ति का ।

यह मोह की असाध्य बीमारी जाती है ज्ञान से और ज्ञान मिलता है सद्‌गुरु से। सद-गुरु के दर्शन और उनकी कृपा से ही इस मोह का नाश होता है, और कोई दूसरा उपाय नहीं है । एक जगह एक महात्माजी का सत्संग चल रहा था । महात्मा जी आसन पर विराजमान थे । उनकी नजर एक ऐसे व्यक्ति पर पड़ी जो एक स्त्री को छाता लगाये जा रहा था । पूछने पर पता चला कि वह स्त्री एक वेश्या है और वह पुरुष उसका आशिक । महात्मा जी के मन में विचार आया कि यह आदमी बड़े काम का है जो संसार में इतना अनुरक्त है, यदि उसका मुख घुमा दिया जाय तो वह ईश्वर की तरफ भी बड़ी तेजी से चल सकता है । उन्होंने आदमी भेजकर उसे बुलवाया । वे दोनों महात्मा जी के सामने आकर खड़े हो गये । महात्मा जी ने उन्हें कृपा की नजर से देखा और बोले आदमी तो तुम बड़े काम के हो, हीरे हो, मगर कीचड़ में फँस गये हो। बस इतना सुनना था कि उसकी सोयी हुयी आत्मा जाग उठी । वे दोनों उनके पैरों पर गिर गये, क्षमा माँगी और अपने आपको सेवा में समर्पित कर दिया । बस गुरु के इन शब्दों से जीवन ही बदल गया । कहाँ संसार के दलदल में फँसा था, कहाँ वह आत्मा की गोद में पहुँच गया। मोह माया का वास्तविक उपचार गुरु का सत्संग ही है ।

यह मोह एक आपरेशनल केस है । कोई भी अपने आप अपने रोगों का इलाज तो कर सकता है, मगर अपना आपरेशन नहीं कर सकता । इसका आपरेशन गुरु ही करता है । सत्संग में ऐसे-ऐसे लोगों को देखा है, उनकी कहानी उनकी जुबानी सुनी है कि कैसे वे संसार के दलदल से निकल कर बाहर आये । कोई घोर शराबी, घोर कामी, क्रोधी, लोभी, हिंसक, यहाँ आकर कितने बदल गये, जीवन कितना पवित्र, शान्त और आनन्दमय हो गया कि आश्चर्य होता है । "आप सत्संग में कैसे आये ?" यह पूछने पर लोगों की आँखें भर आती हैं, बोल नहीं पाते, बस गुरु कृपा के लिये रोम-रोम से धन्यवाद देते हैं । प्रभु से प्रार्थना है कि सबका मोहांधकार दूर हो । ✦✦

अवतरण पर्व पर :

जीवन का वह अद्‌भुत क्षण

– हमारे एक पूज्य सत्संगी भाई

1-1-1901 हमारे परमाराध्य, परम भागवत प.पू.पं. मिहीलाल जी का अवतरण पर्व । उनके साथ रहे उनके दर्शन किये फिर भी आज आँखें प्यासी हैं अनगिनत बार उनकी परावाणी सुनी फिर भी आज कान आकुल-व्याकुल हैं उस वाणी को सुनने के लिए । प्रसंग तो अनेकों हैं पर प्रस्तुत है मात्र एक प्रसंग- सं.

जन्माष्टमी (31 अगस्त 1983), टूण्डला भण्डारे का प्रसादार्पण का दिन । ध्यान के बाद लोगों की आँखें खुलीं तो खुलीं ही रह गईं । सबके नयन के तारे, परमाराध्य, प.पू. पं. जी महाराज मंच पर आराम कुर्सी में विराजे हैं लोग पुलकित हो गये, अश्रु-प्रवाह रोके नहीं रुकता, आँखें पोंछ-पोंछ कर विस्फारित नेत्रों से सभी की टकटकी उस एक केन्द्र बिन्दु पर लगी थी । जहाँ लोभी लोचन इस दरस मधुकरी का छक कर पान करने में तल्लीन थे वहीं कर्ण-कर्ण कुहरों में पूज्य महात्मा श्री विरल भैया की आवाज गूँजी:-

सारी इच्छाओं का समाप्त हो जाना ही सर्वोत्तम कहा गया है लेकिन आज जगतजननी, जगदीश्वरी पूज्या जीया माँ के दरबार में कुछ माँग लेने को मन मचल रहा है । आखिर यहाँ नहीं माँगेंगे तो माँगेंगे कहाँ ? इसीलिए लगे हाथों आज माँ से तीन बरदान माँगता हूँ:-

पहला तो यह कि माँ कृपा करके इस सत्संग की 'गुलामी' की परम्परा को अक्षुण्ण बने रहने का बरदान दो ताकि हर साधक तुम्हारी ही रजा पर राजी रहे, उसकी अपनी कोई इच्छा न हो । आजकल लोगों में जो गुरु परिवार के प्रति थोड़ी-बहुत उदासीनता का भाव आया है उसे दूर करो ताकि गुरु महाराज, उनके पुत्रों, परिवार वालों के प्रति अटूट श्रद्धा बनी रहे ।

[दूसरे व तीसरे वरदान की चर्चा हम नहीं करते।]

तुरन्त बाद परम पूज्य सन्त श्री विरल जी के ये शब्दामृत कान में पड़े । ''अब मैं अपने आराध्य से निवेदन करूँगा कि वे अपने स्वरूप में आयें और कुछ आशीर्वचन कहें ।'' कानों पर विश्वास नहीं हुआ । लेकिन आँखें देख रही हैं, कि जिस आवाज के लिए लोग पिछले चार वर्ष से प्यासे चातक की तरह रट लगाये हुए थे उसकी पीयूष वर्षा हो ही गई। वही चिर परिचित, भाव-भीनी, करुणा मिश्रित आवाज- ''आप सभी लोगों को मेरा आशीर्वाद है। आप लोगों ने यहाँ आकर हमारे ऊपर बड़ा एहसान किया है । गुरु महाराज आपका कल्याण करें''

जीवन के ये अद्‌भुत क्षण । पूरा पण्डाल सिसकियों, फूट-फूट कर रोने की आवाज से भर गया । उस अविरल अश्रु-प्रवाह में सबके पाप-ताप बह गए । ✦✦

जहाँ प्रेम और क्षमा...

– संत श्री चन्द्रप्रभ जी

[संत श्री का प्रस्तुत लेख सम्पादित कर प्रस्तुत किया जा रहा है । लेख के मूल सन्देश की रक्षा करते हुये शब्द संत जी के ही हैं । .....सं.]

साधारण गणित में एक और एक दो हो सकते हैं लेकिन गुस्से के गणित में तो एक और एक ग्यारह ही होते हैं । मैंने भी गुस्सा किया है और उसके दुष्परिणाम देखे हैं । आपने भी अपने गुस्से के दुष्परिणाम जरूर ही देखे होंगे । हम सभी प्रॉफिट वाला बिजनेस करना चाहते हैं, कोई मुझे बता सकता है कि क्रोध करने के क्या-क्या लाभ हैं ? क्या बिलडर, क्या व्यापारी, क्या अफसर, क्या चपरासी, क्या विद्यार्थी, क्या गृहस्थी, बच्चा या बूढ़ा, जवान या मजदूर कोई नहीं कह सकता कि क्रोध करने के अमुक-अमुक लाभ हैं । फिर भी क्रोध किये चले जाते हैं । क्यों ?

अगर आप अपने-आप को शांति के रास्ते पर ले आते हैं तो जीवन में संत कहलायेंगे और अशांति आपको जीतेजी नरक में ढकेल देगी । वेश बदलकर संत तो बना जा सकता है, पर शांत होना वास्तविक संतत्व का प्राण है । महाराज तो बन सकते हैं, पर संत होना महान बात है । आप घर में रहकर शांत रह सके तो यह किसी संत होने से कम नहीं है । हम केवल अरिहंत की पूजा न करते रहें । खुद अरिहंत होने की पहल करें । अरिहंत यानी शत्रु का हनन करने वाला । क्रोध हमारा शत्रु है । हम शत्रु पर विजय प्राप्त करें । क्रोध पर विजय प्राप्त करना सबसे बड़ी विजय है ।

मैं प्रेम का पथिक हूँ, प्रेम से जीता हूँ, प्रेम को जीता हूँ । प्रेम में, शांति में ही जीवन का स्वर्ग और जीवन का सुख नजर आता है । भाई सबको! चार दिन जीना है और कब किसको चला जाना है, कहा नहीं जा सकता । याद वे ही रखे जायेंगे जो याद रखे जाने जैसा कर्म और व्यवहार करेंगे। प्रेम, शांति, सम्मान और विनम्रता का परिणाम है स्वर्ग । क्रोध, घमंड, ईर्ष्या, नफरत का परिणाम है नरक । खुद ही खुद का मूल्यांकन कर लो कि हमारे जीवन का परिणाम स्वर्ग है या नरक ।

एक ओर नरक, एक ओर स्वर्ग। जिनसे गलती हो जाए, उन्हें माफ कर दो, यह है स्वर्गिक व्यवहार। इसी तरह खुद से गलती हो जाए इसके लिए माफी मांग लो, यह है स्वर्गिक बरताब । याद रखो, स्वर्ग उनके लिए है जो गलती करने वालों को माफ कर देते हैं, और स्वर्ग उनके लिए है जो दूसरों पर रहम करते हैं । ईश्वर उन्हीं से प्यार

करते हैं जो दयालु और क्षमाशील होते हैं ।

शुभ सोचो, शुभ बोलो, शुभ देखो, शुभ सुनो, शुभ करो- ये पांच बातें ही जीवन की पंचामृत बन जानी चाहिए ।

मैंने गुस्से के दुष्परिणाम और प्रेम के शुभ परिणाम देखे हैं । इसीलिए कहता हूँ गुस्सा मत करो, प्राणीमात्र से प्रेम करो । सभी से प्रेम करना जीवन जीने की बेहतरीन कला है । प्रेम स्वयं अहिंसा और अहिंसा का मतलब है अनंत प्रेम । ऐसा मत सोचो कि थोड़ा-सा गुस्सा कर लिया तो क्या हो गया । क्रोध तभी करें जब आपके पास अन्य कोई विकल्प न बचे, क्योंकि क्रोध तो ब्रह्मास्त्र है इसे तभी उपयोग में लायें जब आपके सभी अस्त्र विफल हो जाएँ ।

क्रोध तीन प्रकार का होता है-एक पानी में उठे बुलबुले की तरह कि अभी गुस्सा आया और काफूर हो गया । जैसे पानी में लकीर खींचें तो कितनी देर टिकती है, बस कुछ लोगों का गुस्सा ऐसा ही होता है । दूसरे प्रकार के लोगों का गुस्सा मिट्टी में पड़ी दरारों की तरह होता है कि जब तक प्रेम या मिठास का पानी न मिले दरार रहती है फिर सब एक समान । उनका गुस्सा प्रेम की बरसात होते ही, मीठे बोलों की शीतलता से ठंडा हो जाता है । और तीसरे प्रकार के लोगों का गुस्सा पत्थर में पड़ी दरार की तरह होता है। चाहे जितना प्रयत्न कर लो पत्थर जल्दी जुड़ते नहीं। ठीक इसी प्रकार इन लोगों का गुस्सा कम नहीं हो पाता । और कुछ लोग कमठ की तरह होते हैं जो जन्मों-जन्मों तक क्रोध की धारा को साथ लिये रहते हैं ।

गुस्सा हमेशा दूसरे की गलतियों पर आता है स्वयं की गलतियों पर नहीं । मेरे प्रभु याद रखो जो मसला सुई से हल हो जाए उसके लिए तलवार मत चलाइए । क्योंकि अभी-अभी जिस बात पर गुस्सा आया है उसके साथ चार दिन पुरानी बातें और भी जुड़ जाती हैं, गढ़े मुर्दे उखड़ने लगते हैं। दूसरी बात गुस्सा हमेशा कमजोर पर आता है । पिता अपने बच्चों पर, मालिक नौकर पर, बच्चे खिलौनों पर गुस्सा करते दिखाई देते हैं । जो किसी दूसरे पर गुस्सा नहीं कर सकते वह निरीह मूक जानवरों पर क्रोध करते देखे जा सकते हैं । गुस्सा हमेशा नीचे की ओर बहता है और प्रेम हमेशा ऊपर की ओर ।

क्रोध का परिणाम बड़ा घातक होता है । एक बार क्रोध करने से हमारी एक हजार ज्ञान-कोशिकाएँ जलकर नष्ट हो जाती हैं । जो बच्चे दिन में दस दफा गुस्सा करते हैं उनकी दस हजार ज्ञान-कोशिकाएँ नष्ट हो जाती हैं । इसलिये मेरे बच्चो सदाबहार प्रसन्न रहो । सहनशील बनो । शांत रहो । अगर आप चाहते हैं कि आपकी स्मरण-शक्ति प्रखर बनी रहे तो संकल्प लीजिए कि गुस्सा नहीं करेंगे, नहीं करेंगे, नहीं करेंगे ।

आप गुस्सा करेंगे तो हृदय कमजोर होगा, पाचन क्रिया बिगड़ेगी, दिमागी क्षमता कमजोर होती जाएगी । रक्त चाप असंतुलित होगा, भूख नहीं लगेगी, नींद भी नहीं आएगी । क्रोध का

अन्य दुष्परिणाम है—स्वयं पर नियंत्रण समाप्त हो जाना । क्रोध के कारण आपसी संबंधों में खटास आ जाती है । पल भर का क्रोध पूरा भविष्य बिगाड़ सकता है । क्रोध के कारण कैरियर भी प्रभावित होता है । जो क्रोध नहीं करता वह एक समय भोजन करके भी ऊर्जावान बना रहता है । उसका स्वयं पर नियंत्रण बना रहता है । मैं अनुशासन प्रिय तो हूँ पर गुस्सा नहीं करता । जब भी व्यक्ति गुस्सा करता है, मूर्खता को ही दोहराता है । गुस्से में व्यक्ति अपशब्दों का प्रयोग भी करता है । क्रोध आने पर सारी समझदारी एक तरफ हो जाती है और मुँह से तेज आवाज में अपमानित करने वाली बातें झरने लगती हैं । हमारे द्वारा किया गया थोड़ा-सा गुस्सा हमारे मैत्रीपूर्ण संबंधों को समाप्त कर देता है । इसीलिए कहता हूँ जो कार्य सुई से हो जाए, उसके लिए तलवार का उपयोग न करें ।

क्रोध को जीतने का पहला और कारगर फार्मूला है कि जो काम प्रेम भरे शब्दों से पूरा हो सकता है, उसके लिए तैश क्यों खाया जाए ! अपने मातहत को, बेटे को, बहू को, नौकर को तभी डाँटे-डपटें जब इसके अलावा कोई रास्ता ही न रहे ।

नौकर को अगर छोड़ना भी हो तो गुस्से में न छोड़ें । वह आपके लिए घातक बन सकता है । आपने गुस्से में आकर उसे घर से या दुकान से निकाला है, निश्चय ही इसका गुस्सा उसे भी है । वह अपना गुस्सा आप पर निकाल सकता है । आप पर कोई जानलेवा हमला भी कर सकता है। इसलिए सावधान ! जब भी किसी नौकर को छोड़ें, मिठास भरे वातावरण में छोड़ें, जाते समय उसे इनाम भी दें और धन्यवाद भी कि इतने समय तक तुमने हमारी सेवा की । यही नहीं, भाई-भाई भी अगर कभी अलग हों, पिता-पुत्र अलग हों, तब भी प्रेम के साथ एक दूसरे से बिदा हों, ताकि अलग होने के बाद एक दूसरे से मिलने के काबिल तो रहो । जरूरत पड़ने पर एक दूसरे की मदद भी ली जा सके । गुस्से में अगर अलग हो बैठे, तो उपेक्षित बेटा-बहू दूसरों के सामने आपकी बदनामी ही करेंगे । व्यक्ति की समझदारी इसी में है कि वह विपरीत वातावरण बन जाने पर किस तरह विजय पाता है ।

अब हम देखें कि क्रोध आने पर कैसे इसका निवारण किया जाए— जब भी गुस्सा आये तो इसे कल पर टालने की आदत डालें । यदि गुस्से को हाथों-हाथ प्रकट कर दिया तो वह बात नहीं होगी, आग का लावा होगा । व्यक्ति, व्यक्ति नहीं होता, ज्वालामुखी बन जाता है । गुस्सा प्रकट हुआ यानी ज्वालामुखी फट पड़ा ।

गुस्सा आ गया, कोई बात नहीं, थोड़ा धीरज करें । धीरज से बढ़ा कोई मित्र नहीं है । विपरीत वातावरण बन जाने पर ही धैर्य की परीक्षा होती है । क्रोध का इलाज है धैर्य । दस मिनट का धीरज आपके दस घंटे की शांति को बर्बाद होने से बचा सकता है । धीरज छोड़ा कि गये काम से। फिर तो क्रोध का पूरा खानदान आ धमकेगा।

आपकी शांति, आपकी समझदारी, आपके रिश्ते, आपके आनंद-सबको चूहों की तरह कुतर जाएगा।

आप तो गुस्सा छोड़िए, सुख से जीवन का आनंद लीजिए । क्रोध मुक्ति का एक और मंत्र लीजिए: क्रोध का वातावरण बनने पर उस स्थान से अलग हो जाएँ । कमरे में आ जाएँ, कुछ अच्छा सा संगीत सुनलें, नहीं तो सफाई करलें मतलब कि अपना ध्यान बँटा दें । अगर ऐसा नहीं कर सकते यानी कि वहाँ से हटना मुमकिन नहीं है तो ठंडा पानी पी लें । जब दूध में उफान आता है तो पानी के छींटे डालकर उफान को रोक देते हैं या गैस बंद कर देते हैं । ठीक इसी तरह क्रोध का तापमान कम करने के लिए ठंडा पानी पी लीजिए, वह भी ठंडा हो जायगा । आप ठंडा होकर देखिए तो सही, अगला ठण्डा बर्फ हो जाएगा ।

एक बात और यदि हमारे कारण किसी को गुस्सा आ जाए तो सॉरी कहना न भूलें । जरा भी देर न लगाएँ, तुरन्त सॉरी कह दें । सॉरी शब्द बड़ा पावरपुल है । अगले के टेम्प्रेचर को एक ही क्षण में फिफ्टी परसेंट कर देता है । जीवन में तीन शब्द प्लीज, थैंकयू और सॉरी- सदा इस्तेमाल कीजिए । आप जितनी बार प्लीज कहेंगे सामने वाला उतना ही प्लीज्ड होगा, धन्यवाद देते ही वह कृतज्ञ हो जायगा और सॉरी कहने से क्रोध के वातावरण में तत्काल नमी का संचार हो जाएगा।

जिंदगी में सदा मुस्कुराते रहें, फासले कम करें और प्रेम करना सीखें । ताने मारना छोड़ें । याद रखें माचिस की तीली के सिर होता है, पर दिमाग नहीं । अतः वह थोड़े से घर्षण से जल उठती है । पर हमारे पास सिर भी है दिमाग भी, फिर हम क्यों जरा-जरा सी बात पर सुलग उठते हैं । हमें तो अपनी बुद्धि का उपयोग करना है और विवेकपूर्वक अपने गुस्से पर नियंत्रण रखना है ।

हम सब लोग अपनी वीरता को पहचानें और शांति-पथ के पुजारी बनें । मेरी समझ से आज के बाद आप अपने क्रोध को अपने काबू में रखेंगे। जीवन में, वाणी में, व्यवहार में मिठास घोलेंगे । दुनिया में शिव-शंकर वही कहलाते हैं, जो दूसरों के हिस्से का जहर खुद पी जाया करते हैं और बदले में लोगों को अपनी दिव्यता और मिठास लौटाया करते हैं । ✦✦

:- कर्ममय योग -:

अपने-अपने भाग्य का भोग रहे सब भोग
बिन भोगे मिटता नहीं, संस्कार का रोग
संस्कार का रोग, भोगती दैहिक माया
दुख है यही समझ मेरी, मैं हूँ यह काया
अनजाना को जान लूँ, ना कर्त्ता ना भोग
इसमें ही श्रद्धा जगे, यही कर्ममय योग

संत-चरित :-

परम संत श्री ठाकुर राम सिंहजी

– श्री शिवप्रकाश अरोड़ा

संतों के विकास के लिए विधाता की रीति निराली है । वह व्यक्तियों के उस समूह में संतों को रखता है जहां वो घोर अंधेरे में दीपक की तरह प्रज्वलित होकर अपनी नैतिकता, प्रेम व आध्यात्मिकता की प्रेमवर्षा करते हैं । ऐसे ही परम सन्त श्री रामसिंहजी थानेदार साहब हुए हैं जो थानेदारी की सेवा के अपवाद थे । स्थूल में काम थानेदारी का था लेकिन सूक्ष्म में काम अपराधियों के अन्तरमन को बदलने का था तथा उस स्थान पर सुख व शान्ति कायम करने का था

परम पूज्य ठाकुर साहब श्रीमान् रामसिंहजी साहब का जन्म ठाकुर मंगलसिंहजी के घर जयपुर के मनोहरपुरा ग्राम में 3 सितम्बर 1898 को हुआ। आपके पूज्य पिताजी को भगवान राम के युगल स्वरूप सीताराम के ध्यानावस्था में दर्शन हुआ करते थे। इसकी चर्चा एक बार अपने पुत्र के समक्ष करने पर पुत्र ने भगवान राम का दर्शन करना चाहा । पूज्य पिताजी के आशीर्वाद से उन्हें भी हर वक्त भगवान राम के साथ होने का अहसास होने लगा । सत्तरह वर्ष की आयु में ही आपका विवाह ठाकुर अरिशालसिंहजी की पुत्री से हो गया । ठाकुर अरिशालसिंहजी भी योग साधना के अच्छे साधक थे, इस प्रकार इनकी साधना दुगनी हो गई। जब ठाकुर रामसिंहजी जयपुर दरबार की पुलिस की नौकरी में जाने को हुए तब उनके पिताजी ने कहा कि यदि नौकरी में पूरा नहीं पड़े तो घी-आटा घर से ले जाना, किसी के सामने हाथ मत पसारना, रिश्वत खाने वालों का हमने हाल बुरा होते हुए देखा है । ठाकुर रामसिंहजी ने इस बात की गांठ बांध ली । कभी भी किसी के सामने हाथ नहीं पसारा, पराए पैसे को कभी स्पर्श भी नहीं किया, यहां तक कि कभी कोई सेवा भी ली तो उसका भुगतान किया चाहे वह सेवा ऊंट की सवारी की थी या फिर अपने सामान को थाने पहुंचाने की, अपने कर्मचारी से भी सेवा नहीं लेते थे । अपना काम खुद करने में विश्वास रखते थे । उनके डी. आई. जी.यंग साहब ने एक बार उन्हें दो संतरे मेहमानबाजी में पेश किए तब भी उसका भुगतान कर उसका उपयोग किया । इस प्रकार वे ईमानदारी के साथ-साथ निशुल्क सेवा, फल इत्यादि से पूरा परहेज करते थे । अपने विभाग में दबंग, ईमानदार व कर्त्तव्यनिष्ठ थानेदार की मिशाल के रूप में विख्यात थे ।

सन् 1926 में रेलवे स्टेशन निवाई की पुलिस चौकी में ठाकुर साहब कार्यरत थे । वहां उनकी मुलाकात परम पूज्य लालाजी महात्मा श्री रामचन्द्रजी फतेहगढ़ के शिष्य श्री कृष्णचन्द्रजी भार्गव से हुई । श्री भार्गव साहब ने इनको महात्माजी महाराज जी का एक चित्र दिया, साथ ही यह

बताया कि ये समर्थ गुरु हैं । ठाकुर रामसिंहजी ने अपनी टेबल पर उस फोटो को रखा तथा उसे देखने लगे, फोटो को देखते-देखते ही अजीव सी मस्ती की स्थिति में चले गए । तब उन्होंने परम पूज्य लालाजी साहब को एक पत्र लिखकर मेसमेरेजिम सीखने की इच्छा प्रकट की । जबाव में परम पूज्य लालाजी साहब ने लिखा, 'अजीजबन्द !' मैं तो केवल नाम आधार हूँ, ईश्वर की ओर मुँह किए हुए हूँ, मेसमेरेजिम नहीं जानता ।' जवाब में ठाकुर साहब ने लिखा, 'मैं तो आपका हो चुका' रुहानी दौलत के मालिकों के पास एक अन्तर दृष्टि होती है वे दूर से ही भक्तों को पहिचान लेते हैं, कृपा वर्षा करते भी हैं फिर भी उन्होंने जबाव दिया कि शरीर स्थूल है, एक बार मिलना जरूरी है, लेकिन ठाकुर साहब को छुट्टी नहीं मिली और मिलना उस समय नहीं हो सका । प्रेम व आकर्षण बढ़ता रहा व तसब्बुर जारी रहा, रुहानी फैज बरसता रहा । गुरु महान दयालु होते हैं, वे स्वयं ही प्रेमी शिष्य से मिलने उनके नजदीक गांव बांदीकुई अपने मिलने वाले के यहां पहुंच गए और इतला भिजवाई ठाकुर रामसिंह जी के पास जो उस समय पलसाना में थे। खबर मिलते ही ठाकुर साहब बांदीकुई पहुंचे और अर्ज किया 'मैं रामसिंह हूँ'। परम पूज्य लालाजी साहब ने फरमाया, 'तुम हूबहू वैसे ही हो जैसा हमने तुम्हें देखा था । तुम्हारा प्रेम मुझे यहां खींच लाया । प्रेम एक ऐसी चीज है जो सातवें आसमान को भी चीरकर निकल जाता है ।' ठाकुर रामसिंहजी साहब ने बताया कि उन्हें सवेरे वापस जाना होगा । सवेरे परम पूज्य लालाजी साहब व ठाकुर साहब पलसाना पहुंचे और फिर जयपुर गए और उनके निवास स्थान पर ठहरे । बस पहली ही मुलाकात में ठाकुर रामसिंहजी को रुहानी दौलत से मालामाल कर दिया, इस बात की पुष्टि ठाकुर साहब ने निम्न बात कह कर बताई, 'दूसरे दिन जब मैं चांदी की टकसाल से इक्के में बैठा आ रहा था तो तांगे वाले ने एक गजल गाई

तेरे इश्क का यह असर देखता हूँ,
तरक्की पे दर दे जिगर देखता हूँ ।
समाया है जब से तू मेरी नजर में,
जिधर देखता हूँ तुझे देखता हूँ ।

मैंने देखा कि मेरी भी यही हालत हो गई है ।' रवानगी के समय ठाकुर साहब ने गुलाब के फूलों का एक गुलदस्ता भेंट किया तब परमसंत पूज्य श्री लालाजी साहब ने आशीर्वाद दिया कि 'तुम्हारा यश गुलाब के फूल की तरह फैल जाएगा ।' तब से उनका जीवन ही बदल गया । हर मिलने वाले व्यक्ति को अपने प्रेम, भोजन व रुहानी दौलत से मालामाल करते रहे । नौकरी नौकरी की जगह व आध्यात्मिक सेवा अपनी जगह, पूरी तरह छुप कर सेवा करते रहे । उन्होंने अपने जीवनकाल में कभी भी अपराधी से सच बोलाने के लिए बल का प्रयोग नहीं किया जबकि अपने हाथ से खाना बना कर पहिले मुलजिम को खिलाते फिर स्वयं खाते । इस प्रकार ईश्वरीय प्रेरणा से वह अपराधी स्वयं सही व सच्ची बात बता देता था। न्यायालय के न्यायाधीश भी उनकी रिपोर्ट को ही अन्तिम रिपोर्ट मान कर अपना फैसला दिया करते थे । अनेक मुलजिमों का जीवन परिवर्तन उनके व्यवहार के कारण हो गया, वे भी सामान्य जन की भांति रहने लगे ।

परम सन्त थानेदार साहब के करुणा भाव के अनेक प्रसंग हैं, किसी के वर्षों पुराना पैरों का भंयकर दर्द एक दिन में ठीक होना, किसी का आंख का घाव एक रात में ठीक होना, पुरी की

पूरी बस उलट जाने पर भी किसी को कुछ नहीं होना, इत्यादि इत्यादि, ये सब सन्तों की दया होती है । सबसे बड़ा चमत्कार तो यह था कि उन्होंने अपना अहं अपने गुरु भगवान में विलीन कर दिया था, कभी-कभी तो अपना नाम भी भूल जाते थे, जो भी उनके पास आता था, गुरु भगवान को सुपुर्द कर देते थे । एक दिन उनके साथ प्रशिक्षण के लिए मालपुरा के थानेदार श्री कुशलसिंह राजावत को अपने साथियों के साथ शराब पीते हुए देखा तो बाद में अपने पास बैठा कर कहा, 'आप शराब मत पिया करो ।' राजावतजी बोले, 'आप क्या जानो शराब का मजा, एक दिन पीकर तो देखो, स्वर्ग आसमान से उतर कर धरती पर आ जाता है' । ठाकुर साहब मुस्करा कर बोले 'शराब तो हम भी पीते हैं, पैसे भी नहीं लगते और नशा भी चौगुना आता है ।' तब राजावत जी ने पूछा, 'क्या ऐसी भी शराब होती है। ठाकुर साहब ने शाम को पिलाने का निमन्त्रण भी दे दिया । उसी शाम राजावतजी ठाकुर साहब के कमरे में आ गए । ठाकुर साहब ने कहा कि हाथ पैर धोकर सामने बैठ जाओ । बातें होती रही, राजावतजी पर नशा छाने लगा । वाणी मौन-शरीर की सुध बुध नहीं रही, प्रकाश ही प्रकाश था । राजावतजी आनन्द विभोर हो गए और सुध वापस लाने पर उन्होंने ठाकुर साहब के चरण पकड़ लिए । यह नशा सात दिन तक राजावत जी को रहा । सातवें दिन नशा कम हुआ तो फिर ठाकुर साहब की याद आई, उनके पास गए फिर वही नशा । बस शराब छूट गई और राजावतजी ठाकुर साहब के शिष्य बन गए । शिष्य धर्म को पूर्ण करने के लिए उन्होंने भी पुरानी आदतें छोड़ ठाकुर साहब के आदर्शों को अपना कर पूर्ण दृढ़ता से पालन करना आरम्भ कर दिया।

आप रामाश्रम सत्संग मथुरा उपकेन्द्र जयपुर के भण्डारे में पीछे की पंक्ति में चुपचाप आकर बैठ जाते थे, परम पूज्य पंडित जी महाराज इनका बहुत सम्मान करते थे । वे अपने आसन से उठ कर अपने साथ आगे चलने का भी आग्रह करते थे लेकिन कभी भी वे आगे नहीं बैठे, वे कहते थे, 'यह तो गुरु भगवान का दरबार है, मैं यहां आराम से बैठा हूँ ।' ऐसी सादगी, नम्रता व अहंरहित स्वभाव के धनी थे ठाकुर साहब । आपने अपना स्थूल शरीर दिनांक 14 जनवरी 1971 (मकर सक्रान्ति) को गुरु भगवान में विलीन कर दिया। जयपुर व अन्य स्थानों पर आपके कुछ शिष्य हैं जो मकर सक्रान्ति पर जयपुर के पास मनोहरपुरा ग्राम में आपकी मनोहर भव्य समाधि पर वार्षिक सत्संग समारोह आयोजित कर आध्यात्मिक लाभ उठाते हैं ।

आपने समय-समय पर सत्संगी भाइयों को जो उपदेश दिए, जिनमें मुख्य रूप से निम्न हैं:

1. अपने दिल पर नजर जमा लो । उनकी याद में हरदम मस्त रहो,

2. हर हाल में खुश रहना, यह है खुदा परस्ती

3. अपना काम अपने हाथ से करो, यानि सेवा करो व सेवा लेने से परहेज रखो,

4. अपने प्रेम का दायरा बढ़ाओ, आस पास के लोगों से प्यार-मोहब्बत करो।

5. पराए पैसे पर मन मत चलाओ, न ही पराई नारी को बुरी नजर से देखो,

6. भोजन को भजन में बदल लो और नींद को याद में,

7. पत्नी को हमख्याल बनाओ और दोनों प्रेम से रहो । ✦✦

अध्यात्म और व्यवहार

– श्री दयाकृष्ण जोशी

प्रत्येक कार्य स्वतः परिणामी होता है । प्रातः काल समय पर जागने से तन और मन स्वस्थ रहते हैं जबकि अत्यधिक शयन से हम बहुत खो रहे होते हैं । व्यायामादि क्रियाओं से स्फूर्ति और ऊर्जा मिलती है तो आलस्य और अकर्मण्यता से स्वास्थ्य का क्षरण होता है । अनपेक्षित वार्तालाप से मन चंचल रहता है और संयत भाषण से वह स्थिरता को प्राप्त करता है । अनवरत विद्याभ्यास से विद्वत्ता अर्जित की जाती है तथा इसी विद्या का योग परमार्थ से हो जाने पर परमलक्ष्य की प्राप्ति सुगम हो जाती है । उपरोक्त की भाँति अध्यात्म की भी परिणति व्यवहार में होती है ।

अध्यात्म ज्ञान व व्यवहार परस्परापेक्षी हैं । जीवन में जो कुछ भी सीखा या किया जाता है उसका परिणाम आचरण में दिखाई दे जाता है । शिक्षा और संस्कार प्राणीमंत्र को प्रभावित कर उसके व्यावहारिक पक्ष को प्रदर्शित करते हैं। ज्ञान संसार और परमार्थ में संतुलन बनाये रखता है तथा प्रत्येक क्रिया-कलाप में प्रतिबिम्बित होता है । इसी ज्ञान से व्यवहार का यथार्थ रूप प्रत्यक्ष कर दिखाना सदाचार व नैतिकता का लक्षण है । इसके लिए ध्येय और कर्म में सामंजस्य आवश्यक है । ध्येय की पूर्ति कर्म की तत्परता पर निर्भर करती है।

वर्तमान काल में भौतिक ज्ञान में प्रगति होने पर भी सुमति के स्तर में ह्रास हुआ है । इसके फलस्वरूप नैतिक मूल्यों के पतन के साथ मनोविकृतियां बढ़ रही हैं। आचरण में नकारात्मकता घर कर रही है । आज अपनी संस्कृति को भुला देने का पश्चाताप कम ही लोगों में दिखाई देता है । रामायण-गीतादि सद् ग्रन्थों और उनकी शिक्षाओं के प्रति उपेक्षाभाव बढ़ रहा है । जो इनमें आस्था रखते हैं वे इनके पाठ या अर्थ-टीका तक सीमित रह जाते हैं । इनमें निर्दिष्ट उस परमात्म तत्व को जो मार्ग दर्शक गुरु और उसके सत्संग से सुलभ होता है उसे प्रधानता नहीं दी जाती । संत शिरोमणि तुलसीदास जी ने स्वप्रणीत रामायण में यत्र-तत्र नर तन धारी परमेश्वर की भक्ति और उसके संसर्ग को प्रमुखता से चित्रित किया है। उन्होंने 'गुरु बिनु भवनिधि तरै न कोई । जो बिरंचि संकर सम होई' तथा 'बिनु सत्संग विवेक न होई' आदि अनेक उद्धरणों से स्पष्ट घोषणा की है कि कोई कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो विना गुरु के भव पार नहीं कर सकता तथा सत्संग के विना विवेक दृष्टि नहीं मिलती। आस्तिक भाव होने पर भी यथोचित मार्ग दर्शन के अभाव में अध्यात्म की अनुभूति नहीं हो पाती ।

श्रीमद्-भगवत् गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण अपने श्रीमुख से उस ज्ञान की प्राप्ति हेतु किसी तत्त्वदर्शी पुरुष की सन्निधि में जाने तथा उसे प्रसन्न कर प्राप्त करने को प्रेरित करते हैं । (गीता 4/34) 'आचार्योपासनम्' (गीता 13/7) द्वारा भी गुरु भक्ति पर ही बल देते है । संत तुलसी

और योगेश्वर श्रीकृष्ण जैसे महापुरुषों के मुखारबिन्दु से निकले दिव्य कथनों को न मानना बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती । भरसक प्रयास से उन अमृत वचनों को अपने व्यवहार से चरितार्थ कर दिखाना एक सच्चे जिज्ञासु का परमकर्त्तव्य है । आज का मनुष्य विज्ञानादि प्रायौगिक विषयों के सिद्धान्तों को प्रयोग द्वारा सिद्ध कर दिखाने की क्षमता तो रखता है परन्तु संतों और सद्ग्रन्थों की शिक्षाओं को अपने आचरण से प्रत्यक्ष कर दिखाने में असफल ही रहता है ।

कर्म-सिद्धान्त से भी व्यवहार की परीक्षा होती है । लोग कर्म को पूजा कहते हैं लेकिन कर्म के प्रति सच्ची निष्ठा न होने से कथनी और करनी का अन्तर सबके सामने आ जाता है । गीता कहती है- स्वे स्वे कर्मण्याभिरत: संसिद्धि लभते नर: (गीता18/45) अर्थात् अपने-अपने स्वाभाविक कर्म में लगा हुआ मनुष्य भगवत्प्राप्तिरूप सिद्धि को प्राप्त करता है । स्वाभाविक कर्म वह है जो अपनी क्षमता व भावानुसार जीविकोपार्जन के साधन के रूप में किया जाता है । किसी प्रतिष्ठान में कार्यरत कार्मिकों द्वारा कर्त्तव्य-निर्वाह को प्रमुखता दिये जाने से वहाँ अपेक्षित परिणाम प्राप्त होता है। सेवा-परायण सेवकों को मालिक की अनुपस्थिति भी उसकी उपस्थिति का आभास कराती है । वहाँ सारे कार्य 'सारे जहाँ के मालिक के भय और कर्त्तव्य परायण बुद्धि से अपने आप पूरे होते हैं । श्रमशील ऐसे श्रमिकों का कर्म ही उनका धर्म होता है । वस्तुत: ऐसे कर्म निष्ठ ही 'कर्म ही पूजा है' कहने के और भगवत्कृपा के पात्र होते हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । अपने बड़ों से अनुकरण की प्रवृत्ति उसमें सहज पैदा होती है । कहा जाता है कि ज्ञानपूर्वक या अन्तरात्मा की प्रेरणा से किया जाने वाला कोई भी अनुष्ठान ईश्वर की ओर ले जाता है जबकि विना सोचे-विचारे या दूसरों की देखा-देखी किया जाने वाला कर्म संसार-बन्धन का हेतु बनता है । जब तक हृदय में परमात्मा के दर्शनों की तीव्र उत्कंठा जाग्रत नहीं होती तब तक सारे कर्म अनुष्ठान औपचारिकता मात्र होते हैं । किसी से सुना कि "अमुक पर्वत शिखर या मन्दिर विशेष में भगवान या भगवती साक्षात् विराजती हैं और वहाँ सभी मनोकामनाऐं पूरी होती हैं" मूर्ति दर्शन हेतु वहाँ गिरि-कन्दराओं तक की कठिन् यात्रा की जाती है । भावानुसार फल देते ही हैं । परन्तु इससे जीवन के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता । सारा जीवन स्थूल दर्शन में निकल जाता है फिर भी उस परमात्मा को न मिल पाने की ग्लानि मन में कदापि उत्पन्न नहीं होती । धन की तीव्र आवश्यकता होने पर संसार के किसी दयालु धनी के पास बड़ी आशा लेकर जाते हैं । वहाँ उसके छायाचित्र (फोटो) के दर्शन से नहीं अपितु स्वयं उससे मिलकर ही काम बन सकता है। अपनी मन की बात उसके समक्ष रखी जा सकती है । वह वहाँ न मिले तो मन कितना उद्विग्न हो उठता है । ऐसी उद्विग्नता उस 'सर्वव्यापी' के लिए भी हो जाये तो उसके द्रवीभूत होने में देर नहीं लगती तथा मन की अभिलाषा भी पूरी होती है।

इसी प्रकार तीर्थ यात्रा भी मात्र पर्यटन नहीं, धार्मिकता पर आधारित पवित्र नदियों के तटों पर

स्थित तीर्थों में पूर्वज ऋषि मुनियों की साधना का प्रभाव जो उस क्षेत्र के वातावरण को शुद्ध बनाये हुए है उसके स्पर्श और मार्जन तथा पावन नदियों में अवगाहन से मन की दिशा व दशा बदल जाती है । जिन मन्दिरों और तीर्थों की महत्ता सुनते आये, वे पूर्व तपस्वियों के तप: स्थल रहे हैं। इन्हीं पवित्र स्थलों में उन्होंने जीवन के परमलक्ष्य को पाया था । उन्हीं के तप: प्रभाव से आज भी ये आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं। अध्यात्म पथिकों के लिए प्रकाशस्तम्भ हैं । उन संत-महात्माओं के त्याग व साधना के साक्षी हैं जो हमें ईश्वरीय मार्ग का अनुसरण करने का सन्देश देते हैं । मन्दिर दर्शन या तीर्थ भ्रमण मन को ईश्वर की ओर मोड़ने के साधन हैं । रामायण में संत समाज (सत्संग) को चलता फिरता तीर्थराज कहा गया है। 'मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू' । इस अकथ और अलौकिक तीर्थ राज में मञ्जन करने में कौए कोयल और बगुले हंस बन जाते हैं । यहाँ चारों पदार्थ (धर्म अर्थ काम और मोक्ष) की अनायास प्राप्ति हो जाती है। ऐसा संत समागम (सत्संग) साधना की सिद्धि का प्रतिफल होता है ।

शास्त्र सम्मत व युक्तिपरक विधि न अपनाने से जीवन यात्रा समग्र रूप से सम्पन्न नहीं हो पाती। शिक्षित होकर भी दिनचर्या ज्ञान के निम्नस्तर को सूचित करती है । हम दुर्गम तथा सुदूरस्थित देव-मन्दिरों और तीर्थस्थानों में उस प्रभु को खोजने जा सकते हैं। किसी वेषधारी की वाक्शैली से मुग्ध हो उसे अपना दिल दे सकते हैं । परन्तु सीधी सरल सादगी में अपने को छिपाये हुए अपने आल्हादपूर्ण व्यक्तित्व से दूसरों के हृदयों में आनन्द और प्रसन्नता भर देने वाले चलते-फिरते, बोलते-चालते, मानव विग्रह धारी उस नरहरि को परमात्मा स्वीकारने तथा उसके समक्ष प्रणिपात होने को हमारा यह विद्वान मन उद्यत नहीं होता । रामायण में पढ़ते भी हैं कि सीता वियोग में वन में विचरते भगवान् श्रीराम को भक्त प्रवर हनुमान ने उन्हें नर शरीर में ही पहचाना था जिनसे मिलकर उन्हें वर्णनातीत आनन्दानुभूति हुई थी । 'प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना सो सुख उमा जाइ न वरना।' तुलसीदास जी आगे कहते हैं कि मन्द बुद्धित्व, मोह, हृदय की कुटिलता और अज्ञान प्रभु की याद से वंचित कर देते हैं अर्थात् इनसे प्रभु प्राप्ति की राह अवरुद्ध हो जाती है ।

वेद-शास्त्रों या आत्म-ज्ञान पर अविरल बोलते रहने, बड़े-बड़े भाष्य या लेख लिखने, आसन प्राणायाम साधने अथवा घंटों पूजा-पाठ में लगे रहने से उस आत्म-तत्व का पूर्ण रूप से परिचय नहीं मिल पाता है। सब कुछ करते हुए भी जहाँ कुछ भी नहीं करना होता है, कर्त्तव्य भाव से विलग अकर्म-स्थिति में उसका आभास मिल सकता है। इसी के लिए साधना की जाती है। साधना की युक्ति सत् पुरुषों से सीखी जाती है। सन्तों के सानिध्य में मन शनै:शनै: ईश्वरोन्मुख होता जाता है । समस्त विचारों और विकारों से परे वह उस 'अमीरस' का स्वाद ग्रहण करता है जो दूसरी साधना से सम्भव नहीं है । जीवन जीने की यही कला है । महाप्रभु से प्रार्थना है कि हमें ज्ञान के व्यावहारिक आदर्श प्रस्तुत करने की शक्ति प्रदान करें। ✦✦✦

साहित्य परिचय

साधना तत्व

1. संसार में जो भी साधनायें हैं, वह सब हैं कुछ न कुछ करने की। किसी में आसन मारने को कहा गया है, किसी में प्राणायाम लगाना बतलाया है, तो किसी में मन रोकने के लिये एक बिन्दु नासिका या भ्रू का ध्यान करना बतलाया है, परन्तु हमारी साधना में कहा जाता है कुछ न करने को। तुम कुछ सोचना चाहते हो तो इस सोचने को बन्द कर दो, तुम कुछ देखना चाहते हो तो इस देखने को बन्द कर दो, और यदि तुम दूसरे की बात सुनना चाहते हो तो औरों से अपनी बात बन्द कर दो, यह है इस साधना का रहस्य ।

आत्म ज्ञान की साधना ठीक यही है कि यदि तुम आत्मा की ओर देखना चाहते हो तो तत्वों को देखना बन्द कर दो, आत्मज्ञान का आनन्द लेने के लिये विषयों के आनन्द की ओर थोड़ी देर न देखो जब तुम स्वयं शोर कर रहे हो तो शान्ति की बात क्या सुनोगे?

आध्यात्मिक और शारीरिक ब्रह्मचर्य - ''नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो, न प्रवचनेन लभ्यो' वह परमात्मा कमजोर आदमी को नहीं प्राप्त होता है और न जो उसके सम्बन्ध की बातें ही कहता रहता है उसे मिलता है जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि गुप्त रहती है और रगड़ने से निकलती है और दही में मक्खन छिपा रहता है, उसके बिलोने पर वह बाहर आता है इसी प्रकार अनुभवी गुरु की बताई हुई क्रिया से जब पूर्ण उद्योग किया जाता है तभी उसका दर्शन होता है। इसलिये कहा जाता है कि जिज्ञासु में शारीरिक और मानसिक बल दोनों ही होने चाहिए, तभी चढ़ाई करके उसकी नगरी में पहुँचा जा सकता है। निर्बल आदमी में हिम्मत नहीं रहती, वह पुरुषार्थ नहीं कर सकता इसलिये ही वीर्य रक्षा का ब्रह्मचर्य के साधन में विधान है, और वह उसके लिये बहुत जरूरी है। वीर्य रक्षा कैसे की जाती है इत्यादि इस पुस्तक में विस्तार से समझाया गया है।

नवीन प्रकाशन

ज्योति पुरुष की रश्मियाँ - ज्ञान की पूर्णता अध्यात्म में है। गुरु शिष्यों के रूप में स्वयं अवतरित होकर इस अनन्त ज्ञान का प्रचार-प्रसार करते रहते हैं। गुरु महाराज के बाद उनके ही स्वरूप जिन महापुरुषों ने इस अमृत को जन-जन में बाँटने का काम किया उन सभी महापुरुषों का जीवन चरित्र एवं उनके योगदान को इस अमूल्य ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है।

दूरियाँ कहां हैं - अनन्तकाल से उस परमात्म तत्व परमात्मा के लिए मनुष्य के अन्दर में जिज्ञासा चली आ रही है। अनेकानेक ऋषियों, मुनियों एवं मनीषियों ने अपना-अपना योगदान दे इस मार्ग को प्रशस्त किया है। सतमंत के प्रादुर्भाव ने इस मार्ग को सरल एवं सहज बनाया । सभी महापुरुषों ने यह स्वीकार किया कि वह परमात्मा कहीं दूर नहीं, निकट से निकट है, सर्वत्र वह तत्व व्याप्त हो रहा है। इसी पर इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। पढ़ें और लाभ उठायें।

आवश्यक सूचनाएं

1. जिया माँ मेमोरियल ट्रस्ट की मीटिंग मथुरा भण्डारे के समय 16 फरवरी 2015 को होगी। अत: छात्रवृत्ति के आवेदन फार्म 10 फरवरी 2015 तक अवश्य साधन प्रेस कार्यालय में भेजने की कृपा करें।
2. सत्संग साहित्य जो आप मंगाना चाहते हैं उसका कुल मूल्य एवं डाक खर्च साधन प्रेस कार्यालय से पता कर मनीआर्डर ई.एम.ओ. डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा भेजकर मंगाया जा सकता है।
3. E-mail : sadhanhindimonthly@gmail.com
   Website : www.sadhan.in, www.facebook.com/sadhan.ramashram
   Ph. : 0565-3290790, Mob. : 09319680800

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्रों का भण्डारा

बीकानेर

दिनांक	:	24 (सुबह से), 25 एवं 26 मार्च 2015
सत्संग स्थल	:	महेश्वरी भवन, विश्वकर्मा गेट के अन्दर, पुराणी गजनेर रोड
सम्पर्क सूत्र	:	श्री बैजनाथ पारीक मो. 09414338550
	:	फोन नं. 0151-2200905

जयपुर

दिनांक	:	27 (सुबह से), 28 एवं 29 मार्च 2015
सत्संग स्थल	:	ब्राह्मण महासभा भवन, परशुराम परिसर एस-1, सैक्टर-4, मंदिर मोड़, पानी की टंकी के पास, विद्याधर नगर
सम्पर्क सूत्र	:	श्री अमित कुमार जी फोन नं. : 0141-2710847

समाचार इधर-उधर के :-

जानो जायफल

– **श्री राजेन्द्र अग्रवाल,** आयुर्वेदिक विशेषज्ञ

जायफल कई बीमारियों में काम आता है। इसका इस्तेमाल कई तहर के घरेलू उपचार में भी कर सकते हैं ।

जायफल बहुत ही थोड़ी मात्रा में गरम मसाले में प्रयोग किया जाने वाला एक मसाला है । इसके औषधीय गुण भी कम नहीं हैं । भूख नहीं लगती हो, तो चुटकी भर जायफल की कतरन चूसकर देखें, कुछ ही देर में आराम मिलेगा । इससे पाचक रसों की वृद्धि होगी, भूख बढ़ेगी और खाना भी ठीक से पचेगा । जायफल, सौंठ और जीरे को पीसकर चूर्ण बना लें । इस चूर्ण को भोजन करने से पहले पानी के साथ लें । गैस और अफरा की परेशानी नहीं होगी । पेट में दर्द हो तो जायफल के तेल की 2-3 बूंदें एक बताशे में टपकाएं और खा लें । जल्द ही आराम आ जाएगा।

प्रसव के समय होने वाले दर्द से छुटकारा पाने के लिए जायफल को पानी में घिसकर, इसका लेप कमर पर करें, लाभ मिलेगा । दस जायफल लेकर देशी घी में अच्छी तरह सेकें और पीसकर छान लें । इसमें दो कप गेहूं का आटा मिलाकर घी में फिर सेकें । इसमें शक्कर मिलाकर रख लें। रोजाना सुबह खाली पेट इस मिश्रण को एक चम्मच खाएं, बवासीर से छुटकारा मिल जाएगा । जायफल के चूर्ण को शहद के साथ खाने से हृदय मजबूत होता है। जायफल को पानी में पकाकर उस पानी से गरारे करें । मुंह के छाले ठीक होंगे, गले की सूजन भी जाती रहेगी । दांत में दर्द होने पर जायफल का तेल रुई पर लगाकर दर्द वाले दांत या दाढ़ पर रखें, दर्द तुरंत ठीक हो जाएगा । अगर दांत में कीड़े लगे हैं तो वे भी मर जाएंगे । सरसों का तेल और जायफल का तेल एक निश्चित अनुपात में मिलाकर रख लें । इस तेल से दिन में 2-3 बार शरीर की मालिश करें । जोड़ों का दर्द, सूजन, मोच आदि में राहत मिलेगी।

जायफल को कच्चे दूध में घिसकर चेहरे पर सुबह और रात में लगाएं । मुंहासे ठीक हो जाएंगे और चेहरा निखारेगा । एक चुटकी जायफल पाउडर दूध में मिलाकर लेने से सर्दी का असर ठीक हो जाता है । फटी एड़ियों में जायफल को घिसकर बिवाइयों में लगाने से फायदा होता है । नीबू के रस में जायफल घिसकर सुबह-शाम भोजन के बाद सेवन करने से गैस और कब्ज की तकलीफ भी दूर होती है ।

साभार-अमर उजाला

दिवंगत आत्माओं के लिए प्रार्थना

परम पूज्य श्री गुरु महाराज से प्रार्थना है कि नवम्बर 2014 माह के दौरान रामाश्रम सत्संग (मथुरा) से सम्बन्धित सभी दिवंगत आत्माओं को निजधाम में स्थान दें एवम् शोक संतप्त परिवारीजनों को धैर्य धारण करने की शक्ति प्रदान करें ।

वर्ष : 82 [जनवरी-2015] अंक : 06

राजस्थान तथा बिहार सरकार द्वारा स्वीकृत

※ साधन के नियम ※

1. गूढ़ तथा अनुभवी गुप्त रहस्यों को सरल भाषा द्वारा जनता तक पहुँचाना तथा सदाचार की शिक्षा देना "साधन" का मुख्य उद्देश्य है।
2. साधन प्रत्येक मास की 20-21 तारीख को प्रकाशित होता है। जिन ग्राहकों को पत्रिका अगले माह की 15 तारीख तक न मिले, उन्हें डाकखाने तथा कार्यालय से सम्पर्क करना उचित है। अंक न मिलने पर एक माह के अन्दर सूचित करने पर अंक दोबारा भेज दिया जायेगा।
3. साधन में आध्यात्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक उन्नति के लेख ही छापे जायेंगे। राजनैतिक तथा अश्लील लेख भेजने का कोई भी सज्जन कष्ट न करें।
4. लेखों को घटाने-बढ़ाने और छापने, न छापने का अधिकार सम्पादक का रहेगा, परन्तु लेख प्रकाशित नहीं होने पर सम्पादक उत्तरदायी नहीं होगा। लेख सरल भाषा में कागज के एक ओर ही स्वच्छ लिखे हों।
5. ग्राहकों को पता व ग्राहक नम्बर साफ़-साफ़ लिखना चाहिए। उत्तर के लिए जबाबी कार्ड भेजना आवश्यक है।
6. साधन का वार्षिक शुल्क रुपये 150/= है। एक प्रति का शुल्क रुपये 16/= है। केवल विशेषांक का शुल्क रुपये 20/= है। भारतवर्ष से बाहर दूसरे देशों में रहने वालों के लिए साधन का वार्षिक शुल्क रुपये 1400/= है। एक वर्ष से कम के ग्राहक नहीं बनाये जायेंगे।
7. दस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये 1350/ है और बीस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये 2500/ है।
8. साधन का वार्षिक शुल्क साधारण मनी-आर्डर, ई. एम. ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक (जो मथुरा में देय हो) द्वारा भेज सकते हैं, जो "साधन हिन्दी मन्थली" के नाम 813, डैम्पियर नगर, मथुरा-281001 को भेजा जाये।
9. सत्संग साहित्य जो आप मंगाना चाहते हैं उसका कुल मूल्य एवं डाकखर्च कार्यालय से पता कर मनी आर्डर ई.एम.ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा भेजकर मंगाया जा सकता है।

Licence to Post without Prepayment: Licence No.-AGRA/WPP-01/2015-2017
"Registered" Postal Regd.No.MTR/28/15-17: R.N.I. No- 2358 / 57
Date of Publication: 8th to 15th of every Month

साधन

ॐ

मथुरा

प्रबन्ध सम्पादक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, मथुरा
प्रकाशक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, डैम्पियर नगर, मथुरा
मुद्रक : आलोक कुमार, साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा

E-mail: sadhanhindimonthly@gmail.com, sadhanhindimonthly@yahoo.co.
Website: www.sadhan.in, www.facebook.com/sadhan.ramashram
Ph.: 0565-3290790, Mob.: 09319680800